विषयानुक्रमणिका।

(



भाषाजैननित्यपाठसंग्रह।

प्रथमभाग।

अथ नमस्कार मंत्रादि।

गाथा।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइ-रीयाणं। णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं ॥ १ ॥

चचारि मंगलं–अरहंत मंगलं। सिद्ध मंगलं। साहु मंगलं। केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चचारि लोगुत्तमा–अरहंत लोगुत्तमा। सिद्ध लोगुत्तमा। साहु लोगुत्तमा। केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चचारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि। सिद्ध सरणं पव्वज्जामि। साहु सरणं पव्वज्जामि। केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ओं ह्रौं ह्रौं स्वाहा ॥

वर्तमान चौवीस तीर्थंकरोंके नाम ।

कवित्त ३१ मात्रा ।

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपास प्रभुचंद । पुहपदंत शीतल श्रेयांस प्रभु, वासुपूज्य प्रभु विमल सुछंद ॥ स्वामि अनंत धर्म प्रभु शांति सु, कुंथु अरह जिन मल्लि अनंद । मुनिसुब्रत नमि नेमि पास, वीरेश सकल बंदौं सुखकंद ॥

।श्रीऋषभः १ अजितः २ संभवः ३ अभिनंदनः ४ सुमतिः ५ पद्मप्रभः ६ सुपार्श्वः ७ चंद्रप्रभः ८ पुष्पदंतः ९ शीतलः १० श्रेयांसः ११ वासुपूज्यः १२ विमलः १३ अनंतः १४ धर्मः १५ शांतिः १६ कुंथुः १७ अरः १८ मल्लिः १९ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१ नेमिः २२ पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकालसंबंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ॥

इसप्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये । नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चावल चढाना हो, तो नीचे लिखे पद्य तथा मंत्र पढकर चढावे ।

गीता छंद

यह भवसमुद्रअपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही॥ उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंतश्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ १॥

दोहा।

तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखांडित बीन। जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढकर चढावे।

जे विनयवंत सुभव्य-उरअंबुज-प्रकाशन भान हैं। जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहि प्रधानहैं। लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसौं बचूं। अरहंत श्रुतसिद्धान्त गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं॥ २॥

दोहा।

विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन। तासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु

तीन ॥ ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

यदि किसीको लौंग, बादाम, इलायची या कोई प्रासुक फल चढाना हो तो नीचे लिखे पद्य और मंत्र पढकर चढावे।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साहके करतार हैं। मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुण सार हैं ॥ सो फल चढावत अर्थ पूरन, सकल अमृतरस सचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ३ ॥

दोहा।

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण—रसलीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

यदि किसीको अर्घ चढाना हो, तो नीचे लिखे पद्य व मंत्र बोलकर चढाना चाहिये।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं। वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं ॥ इह भांति अर्घ चढाय

नित भवि, करत शिवपंकति मचूं । अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ४ ॥

दोहा ।

वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन । जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

इति नमस्कारमंत्रादि ॥ १ ॥

(२)

अथ दर्शनदशक ।

छप्पय ।

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन विलाये ।
देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये ॥
देखे श्रीजिनराज, काज करना कछु नाहीं ।
देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमाहीं ॥
तुमदेखे श्रीजिनराजपद, भोजलअंजुलिजलभया।
चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसोंउठिगया।

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर ।

देखे श्रीजिनराज, काज सब होंहि निरंतर ॥
देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये ।
देखे श्रीजिनराज, नाथ दुख कबहु न भरिये ॥
तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोम रोम सुख पाइए
धनिआजदिवसधनिअबघरी,माथनाथकौंनाइए

३

धन्य धन्य जिनधर्म, कर्मकौं छिनमैं तोरै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, परमपदसौं हित जोरै ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, भर्मकौ मूल मिटावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, शर्मकी राह बतावै ॥
जगधन्यधन्यजिनधर्मयह, सोपरगटतुमनैंकिया
भवखेत पाप[2]-तप तपतकौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया

४.

तेज सूरसम[3] कहूं, तपत दुःखदायक प्रानी ।
कांति चंदसम कहूं, कलंकित मूरति मानी ।
वारिधिसम गुणकहूं, खारमैं कौन भलप्पन ॥
पारससम जस कहूं, आपसम करै न परत्तनैं ॥

१ कल्याणकी, आतमहितकी । २ पापरूपअग्निसे तप्त । ३ सूर्य्यसदृश
४ पराये शरीरको अर्थात् दूसरी धातुओंको ।

इन आदिपदारथलोकमैं, तुमसमान[1]क्योंदीजिये
तुममहाराजअनुपमदसा, मोहिअनूपमकीजिये॥

५.

तब विलंब नहिंकियो, चीर द्रौपदिको बाढ्यो।
तब विलंब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो॥
तब विलंब नहिं कियो, सियातैं पावक टारचो।
तब विलंब नहिं कियो, नीरें[2] मातंग[3] उबारचो॥
इहविधि अनेक दुख भगतके, चूर दूर किये सुख अवनि[4]। प्रभु मोहि दुःख नासनिविषैं अब विलंब कारन कवन॥

६.

कियो भौनतैं[5] गौन[6], मिटी आरति संसारी।
राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी॥
देखे श्रीजिनराज, पापमिथ्यात बिलायो।
पूजा श्रुति बहु भगति, करत सम्यकगुन आयो
इस मारवाड़[7] संसारमैं, कल्पवृक्ष तुम दरस है।
प्रभु मोहि देहु भौभौविषै, यह वांछा मन सरस है॥

---

१ पटतर, उपमा। २ जलमेंसे। ३ हाथी। ४ पृथ्वीमें। ५ घरसे। ६ गमन। ७ मारवाडरूपी [वृक्षरहितसूखे देश रूपी] संसारमें।

७

जै जै श्रीजिनदेव, सेव तुम ही अघनासक।
जै जै श्रीजिनदेव, भेवे[1] षटद्रव्य प्रकासक॥
जै जै श्रीजिनराज, एक जो प्रानी ध्यावै।
जै जै श्रीजिनदेव, टेव अहमेव मिटावै॥
जै जै श्रीजिनदेव प्रभु, हेय करमरिपु दलनकौं।
हूजे सहाय सँघरायजी, हम तयार सिवचलनकौं॥

८

जै जिनंद आनंदकंद, सुरवृंदवंद पद।
ग्यानवान सब जान, सुगुन मनिखान आनपद[2]॥
दीनदयाल कृपाल, भविक भौजाल निकालक।
आप बूझ सब सूझ, गूझ[3] नहिं बहुजन पालक॥
प्रभु दीनबंधु करुनामई, जगउधरन तारनतरन।
दुखरासनिकासस्वदासकौं, हमैं एकतुमहीसरन॥

९

देखँनीक[4] लखि रूप, बंदिकरि बंदनीक हुव।
पूजनीक पद पूज, ध्यानकरि ध्यावनीक ध्रुव॥
हरष बढ़ाय बजाय, गाय जस अंतरजामी।

१ भेद। २ गद ऐसा भी पाठ है। ३ गुप्त-छिपी। ४ देखनेलायक।

दरब चढ़ाय अघाय, पाय संपति निधि स्वामी
तुमगुणअनेकमुखएकसौं,कौंन भांति बरननकरौं
मनवचनकायबहुप्रीतिसौं एक नामहीसौं तरौं ॥

१०

चैत्यालय जो करै, धन्य सो श्रावक कहिए ।
तामै प्रतिमा धरै, धन्य सो भी सरदहिए ॥
जो दोनौ विसतरै, संघनायक ही जानो ।
बहुत जीवकौं धर्म,–मूलकारन सरधानो ॥
इस दुखमकाल विकरालमैं, तेरो धर्म जहां चलै
हे नाथ काल चौथौ तहां, ईति[1] भीति[2] सबही टलै॥

११

दर्शनदशक कवित्त, चित्तसों पढ़ै त्रिकालं ।
प्रीतम सनमुख होय, खोय चिंता गृहजालं ॥
सुखमैं निसिदिन जाय, अंत सुरराय कहावै ।
सुर कहाय सिवपाय, जनम मृति जरा मिटावै॥
धनिजैनधर्मदीपकप्रगट, पापातिमिरछयकार है।
लखिसाहिबरायसुआँखिसों, सरधातारनहारहै॥

इति दर्शनदशक ॥ २ ॥

---

1 अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि सात । २ इहलोक परलोक भय आदि सात ।

अथ दर्शन स्तुति ॥ ३ ॥

छप्पय ।

तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज पातक सब भज्जें
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज बैरी सब लज्जे ॥
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज मैं सरवस पायौ ।
तुव जिनिंद दिट्ठियौ, आज चिंतामणि आयो॥
जै जै जिनिंद त्रिभुवन तिलक, आज काज
मेरो सर्यो । कर जोरि भविक विनती करत,
आज सकल भवदुख टर्यौ ॥ १ ॥
तुव जिनिंद मम देव, सेव मैं तुमरी करिहौं ।
तुव जिनिंद मम देव, नाम तुम हिरदै धरिहौं ॥
तुव जिनिंद मम देव, तुही साहिब मैं बंदा ।
तुव जिनिंद मम देव, मही कुमुदनि तुव चंदा ॥
जै जै जिनिंद भवि कमल रवि, मेरो दुःख नि-
वारिकै । लीजै निकाल भव जालतैं, अपनो
भक्त विचारिकै ॥ २ ॥

४

अथस्वयंभूस्तोत्र ।

चौपाई ।

राजविषै जुगलन सुख किया । राज त्याग

भवि सिवपद दिया ॥ स्वयंबोध स्वंभू भगवान ।
बंदौं आदिनाथ गुनखान ॥ १ ॥ इंद्र छीरसागर
जल लाय । मेरुन्हुलाए गाय बजाय ॥ मदन
विनासक सुखकरतार । वंदौं अजित अजित
पदधार ॥ २ ॥ सुकल ध्यानकरि करम विनास ।
घाति अघाति सकल दुखरास॥लह्यो मुकतिपद
सुख अविकार । वंदौं संभव भवदुखटार ॥ ३ ॥
माता पच्छिम रयनमझार । सुपने सोलै देखे सार॥
भूप पूछि फल सुन हरखाय । वंदौं अभिनंदन
मन लाय ॥ ४ ॥ सब कुवादवादी सिरदार ।
जीते स्यादवाद धुनि धारि ॥ जैनधरमपरकासक
स्वाम । सुमतिदेव पद करौं प्रनाम ॥ ५ ॥ गरभ
अगाऊ धनपति आय । करी नगर सोभा अ-
धिकाय ॥ वरखे रतन पंचदश मास । नमौं पदम
प्रभु सुखकी रास ॥ ६ ॥ इंद्र फनिंद्र नरिंद्र त्रि-
काल । वानी सुनि २ होंहिं खुस्याल ॥ वारह स-
भा ज्ञानदातार । नमौं सुपारसनाथ निहार ॥७॥
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं । दोष अठारह को-
ऊ नाहिं ॥ मोह महातमनाशक दीप । नमौं चंद-

प्रभु राख समीप ॥ ८ ॥ बारह विध तप करम वि-
नास । तेरह भेद चरित परकास ॥ निज अनिच्छ
भवि इच्छकदान । बंदौं पहुपदंत मन आन ॥९॥
भवि सुखदाय सुरगतैं आय । दसविध धर्म क-
ह्यो जिनराय ॥ आप समान सबनि सुखदेह ।
बंदौं सीतल धरि मन नेह ॥ १० ॥ समता सुधा
कोपविषनाश । द्वादशांग बानी परकास ॥ चारि
संघ आनंददातार । नमौं स्रिअंस जिनेसुर सार ॥
रतनत्रय सिरमुकुट विशाल । सोभै कंठ सुगुन
मनिमाल ॥ मुकत-नारि-भरता भगवान । वासु,
पूज्य बंदों धरि ध्यान ॥ १२ ॥ परम समाधि स-
रूप जिनेस । ज्ञानी ध्यानी हितउपदेश ॥ करम
नास सिवसुख विलसंत । बंदौं विमलनाथ भग-
वंत ॥ १३ ॥ अंतर बाहर परिगह डार । परम
दिगंबर व्रतकौं धार ॥ सरब जीव हित राह दि-
खाय । नमौं अनंत वचन मन काय ॥ १४ ॥
सात तत्त्व पंचासति काय । अरथ नवों छ दरब
बहु भाय ॥ लोक अलोक सकल परकास । बंदौं
धर्मनाथ अघनास ॥ १५ ॥ पंचमचक्रवर्ति

निधि भोग। कामदेव द्वादसम मनोग ॥ शांति-
करन सोलम जिनराय। शांतिनाथ वंदौं हरषाय
वहु थुति करैं हरष नहि होय। निंदैं दोष गहैं
नहि सोय ॥ सीलवान परब्रह्मस्वरूप। वंदौं कुंथु-
नाथ शिवभूप ॥ १७॥ वारह गन पूजै सुखदाय।
थुति वंदना करैं अधिकाय॥ जाकी निज थुति
कबहुं न होय। वंदौं अर जिनवरपद दोय ॥ १८॥
परभौ रतनत्रय अनुराग। इस भौ व्याह समै वै-
राग ॥ वालब्रह्म पूरनव्रतधार। वंदौं मल्लिनाथ
जितमार ॥ १९ ॥ विन उपदेश स्वयं वैराग।
थुति लौकांत करैं पग लाग॥ 'नमःसिद्ध' क-
हि सब व्रत लेहिं, वंदौं मुनिसुव्रतव्रत देहिं॥ २०॥
श्रावक विद्यावंत निहार। भगतिभावसौं दियो
अहार ॥ वरखे रतनराशि ततकाल। वंदौं नमि
प्रभु दीनदयाल ॥ २१ ॥ सव जीवनकी बंदी
छोर। राग दोष दोउ बंधन तोर॥ रजमति तजि
शिवतियसौं मिले। नेमिनाथ वंदौं सुखनिले ॥
दैत्य कियो उपसर्ग अपार। ध्यान देखि आयो
फनिधार॥ गयो कमठ शठ मुखकरि स्याम।

नमौं मेरुसम पारस स्वाम ॥ २३ ॥ भवसागरतैं जीव अपार । धरमपोतमैं धरे निहार ॥ डूबत काढ़े दया विचार । वर्धमान वंदौं बहु वार ॥ २४ ॥

दोहा ।

चौवीसौ पदकमलजुग, वंदौं मन वच काय ।
द्यानत पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥

इति स्वयंभूस्तोत्र ॥ ४ ॥

(५)

अथ दौलतरामकृत स्तुति ।

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन ।
सो जिनेंद्र जयवंत नित, अरिरजरहसि विहीन ॥

पद्धरिछंद ।

जय वीतराग विज्ञानपूर । जय मोहतिमिरको हरन सूर ॥ जय ज्ञान अनंतानंतधार । दृगसुख वीरजमंडित अपार ॥ २ ॥ जय परमशांत मुद्रासमेत । भविजनको निजअनुभूतिहेत ॥ भवि भागनवश जोगेवशाय । तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥ ३ ॥ तुमगुण चिंतत निजपरविवेक । प्रगटै, विघटैं आपद अनेक ॥ तुम जगभूषण दूषणवियुक्त । सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥ ४ ॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप। परमात्म परम पावन अनूप॥ शुभअशुभविभावअभावकीन। स्वाभाविकपरिणातिमयअछीन ॥५॥ अष्टादशदोषविमुक्त धीर। सुचतुष्टयमय राजत गंभीर॥ मुनि गणधरादि सेवत महंत। नवकेवललब्धिरमा धरंत॥६॥ तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गये जाहिं जैहैं सदीव॥ भवसागरमें दुखछार वारि। तारनको और न आप टारि॥७॥ यह लखि निज दुखगदहरणकाज। तुमही निमित्तकारण इलाज॥ जाने, तातैं मैं शरण आय। उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥८॥ मैं भ्रम्यो अपनपो बिसरि आप। अपनाये विधिफल पुण्यपाप॥ निजको परको करता पिछान। परमैं अनिष्टता इष्ट ठान॥९॥ आकुलित भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि॥ तनपरणतिमें आपो चितार। कबहूं न अनुभयो स्वपदसार॥१०॥ तुमको बिन जाने जो कलेश। पाये सो तुम जानत जिनेश॥ पशु नारक नर सुर गतिमंझार। भव

घर घर मर्‍यो अनंतवार ॥ ११ ॥ अब काल-
लब्धिवलतैं दयाल। तुम दर्शन पाय भयो खु-
शाल ॥ मन शांत भयो मिटि सकलद्वंद । चा-
स्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥ १२ ॥ तातैं अब
ऐसी करहु नाथ। बिछुरै न कभी तुअ चरण
साथ ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव । जग
तारनको तुअ विरद एव ॥ १३ ॥ आतमके
अहित विषय कषाय। इनमें मेरी परिणाति न
जाय ॥ मैं रहूं आपमें आप लीन। सो करो
होहुं ज्यों निजअधीन ॥ १४ ॥ मेरे न चाह कछु
और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ
कारजके कारन सु आप। शिव करहु, हरहु
मम मोहताप ॥ १५ ॥ शशि शांतकरन तपह-
रन हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभ-
वतैं भव नसाय ॥ १६ ॥ त्रिभुवनतिहुंकाल-
मंझार कोय। नहिं तुमविन निज सुखदायहोय ॥
मोउर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधिउता-
रन तुम जिहाज ॥ १७ ॥

दोहा ।

तुम गुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार ।
'दौल' स्वल्पमति किमि कहै, नमूं त्रियोगसंभार ॥

इति दौलतरामकृत स्तुति ॥ ५ ॥

६

अथ बुधजनकृतस्तुति ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो सरनजी । यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या देव विविधप्रकारजी । या बुद्धिसेती निज न जाण्या भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकटवनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हर्‍यो । तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिर्‍यो ॥ धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो । अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभुको लखलयो ॥ २ ॥ छबि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं । वसु प्रातिहार्य अनंत गुणजुत, कोटि रवि छविको हरैं ॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम

भयो। मो उर हरख ऐसो भयो मनु रंक चिंता-
मणि लयो ॥ ३ ॥ मैं हाथ जोड, नवाय मस्तक
वीनऊं तुअ चरनजी। सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति
जिन, सुनहु तारन तरनजी ॥ जाचूं नहीं सुर-
वास पुनि नरराज परिजन साथजी। बुध
जाचहूं तुअ भक्ति भव भव, दीजिये शिवनाथजी॥

(७)

अथ वृंदावन कृत स्तुति।

(शैरकी रीतिमें तथा और २ रागिनियों में भी बनती हैं)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा
बाना है। मत मेरी बार अवार करो, मोहि
देहु विमल कल्याना है ॥ टेक ॥
त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुमसौं कछु बात
न छाना है। मेरे उर आरत जो वरतै, निहचै
सब सो तुम जाना है ॥ अवलोक विथा मत
मौन गहो, नाहि मेरा कहीं ठिकाना है। हो
राजिवलोचन सोचविमोचन, मै तुमसौं हित
ठाना है ॥ श्री० ॥ १ ॥ सब ग्रंथनिमें निर-
ग्रंथनिने, निरधार यही गणधार कही। जिन-

नायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायकज्ञान मही ॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही । क्यों मेरी बार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥ श्री० ॥ ३ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है । काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है ॥ अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है । इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है ॥श्री०।४। खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसों आन पुकारा है । तुम ही समरत्थ न न्याव करो तब बंदेका क्या चारा है ॥ खल-घालक पालक बालकका, नृपनीति यही जगसारा है । तुम नीति निपुनत्रैलोकपती, तुमहीलगि दौरहमाराहै।५। जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है । तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसों जमराज डराना है । यह सुजस तुह्मारे सांचेका, जस गावत वेदपुराना है। श्री० ६।

जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है। अघ छोटा मोटा नाशि तुरित, सुख दिया तिन्हें मनमाना है॥ पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढा असमाना है। भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है॥ श्री० ॥ ७ ॥ चिंतामन पारस कल्पतरू सुखदायक ये परधाना है। तब दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है॥ तुव भक्तनको सुरइंदपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है। क्या बात कही विस्तार बडी, वे पावें मुक्ति ठिकाना है॥ श्री०८॥ गति चार चौरासी लाख विषें, चिन्मूरत मेरा भटका है। हो दीनबंधु करुणानिधान, अबलौं न मिटा वह खटका है॥ जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है। तुम विघन हमारा दूर करो, सुख देहु निराकुल घटका है॥ श्री०॥९॥ गजग्राह ग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजनतस्कर तारा है। ज्यों सागर गोपदरूप कियो, मैनाका संकट टारा है॥ ज्यों सूलीतैं सिंहासन औ.

बेडीको काट विडारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोको आश तुमारा है ॥श्री०॥१०॥ ज्यों फाटक टेकत पांय खुला औ सांप सुमन करि डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया बालकका जहर उतारा है॥ ज्यों सेठ विपत चकचूर पूर, घर लक्ष्मीसुख विस्तारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु मोको आस तुमारा है॥ श्री० ॥ ११ ॥ यद्यपि तुमको रागादि नहीं यह सत्य सर्वथा जाना है। चिन्मूरति आप अनंतगुनी, नित शुद्धदशा शिवथाना है॥ तदपि भक्तनकी भीड हरो सुख देत तिन्हें जु सुहाना है। यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका, क्या पावै पार सयाना है॥ श्रीपति ॥ १२ ॥ दुखखंडन श्रीसुखमंडनका, तुमरा प्रन परम प्रमाना है। वरदान दया जस कीरतका, तिहुं-लोकधुजा फहराना है॥ कमलाधरजी ! कमलाकरजी, करिये कमला अमलाना है। अब मेरी विथा अवलोकि रमापति, रंच न वार लगाना है॥ श्री० ॥१३॥ हो दीनानाथ अनाथ

हितू, जनदीन अनाथ पुकारी है । उदयागत कर्मविपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥ ज्यों आप और भवि जीवनकी ततकाल विथा निरवारी है । त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै प्रभु आज हमारी वारी है ॥ १४ ॥

इति वृंदावनकृत स्तुति ॥ ७ ॥

(८)

अथ भूधरकृत स्तुति ।

हरिगीतिका ।

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदीवरो । दुर्बुद्धि चकवी विलख विछुर्यो, निविड़ मिथ्यातम हरो ॥ आनंद अंबुज उमग उछर्यो, अखिल आतम निरदले । जिनवदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनवांछित फले ॥१॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया । संसारसागर नीर निवट्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया ॥ अब भई कमला किंकरी मम; उभय भव निर्मल ठये । दुख जर्यो दुर्गति

त्रास निवरयो, आज नव मंगल भये ॥ २ ॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये। मम सकल तनके रोम हुलसे, हर्ष ओर न पाइये ॥ कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको लखे, जो सुर नर घने। तिह समयकी आनंद महिमा, कहत क्यों मुखसों बने ॥३॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको, और वांछा ना रही। मन ठठे[1] मनोरथ भये पूरन, रंक मानो निधि लही ॥ अब होउ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये। कर जोर 'भूधरदास' विनवे, यही वर मोहि दीजिये ॥ ४ ॥

(९)

अथ भूधरकृत दूसरी स्तुति ।

अहो ! जगतगुरु एक, सुनियो अरज हमारी। तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥ १ ॥ इस भव वनमें वादि, काल अनादि गमायो। भ्रमत चहूंगति माहिं, सुख नहिं दुख बहु पायो ॥ २ ॥ कर्म महारिपु जोर, एक न

1. मन भरके।

कानि करै जी । मनमान्यां दुख देहिं, काहूसौं न डरै जी ॥ ३ ॥ कबहू इतर निगोद, कबहू नर्क दिखावै । सुरनर पशुगतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावै ॥ ४ ॥ प्रभु ! इनके परसंग, भव भवमाहिं बुरे जी । जे दुख देखे देव ! तुमसों नाहिं दुरे जी ॥ ५ ॥ एक जनमकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी ! । तुम अनंत परजाय, जानत अंतरजामी ॥ ६ ॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे । कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥ ७ ॥ ज्ञान महानिधि लूटि रंक निबल करि डारयो । इनही तुम मुझमाहिं, हे जिन ! अंतर पारयो ॥ ८ ॥ पाप पुन्यकी दोइ, पायनि बेरी डारी । तनकाराग्रहमाहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥ ९ ॥ इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियो जी । बिनकारन जगवंद्य ! बहुविधि वैर लियो जी ॥ १० ॥ अब आयो तुम पास, सुनि जिन ! सुजस तिहारो । नीति निपुन महराज ! कीजे न्याव हमारो ॥ ११ ॥

१–कुछ भी परवाह ।

दुष्टन देहु निकार, साधुनको रख लीजे। विनवै भूधरदास, हे प्रभु ! ढील न कीजै ॥ १२ ॥

(१०)

अथ भूधरकृत गुरुस्तुति।

वंदौं दिगंबर गुरुचरन जग,—तरन तारन जान।
जे भरम भारी रोगको, हैं राजवैद्य महान॥
जिनके अनुग्रह विन कभी, नहिं कटै कर्मजंजीर।
ते साधु मेरे उर वसहु, मेरी हरहु पातक पीर॥१॥
यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार
ये भोग विष पकवा नसे, इह भांति शोच विचार।
तपविरचि श्रीमुनि व नवसे, सब छांड़ि परिगह भीर
ते साधु मेरे मन वसो, मेरी हरहु पातक पीर॥२॥
जे काच कंचन सम गिनहिं, अरि मित्र एक सरूप
निंदा बढाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप॥
सुखदुःख जीवनमरनमें, नहि खुशी नाहि दिलगीर
ते साधु मेरे उर वसो, मेरी हरहु पातक पीर। ३।
जे वाह्य परवत वनवसैं, गिरिगुफा महल मनोग
सिलसेज, समतासहचरी, शशिकिरनदीपक जोग

१ समान—बराबर

मृगमित्र, भोजन तप मई, विज्ञान निरमलनीर
ते साधु मेरे मन वसो, मेरी हरहु पातक पीर।४
सूखहिं सरोवर जलभरे, सूखहिं तरंगिनि-तोय।
बाटहि बटोही ना चलैं, जहं घाम गरमी होय॥
तिहँकालमुनिवरतपतपहिं, गिरिशिखरठाढेधीर
ते साधु मेरे उर बसो, मेरी हरहु पातक पीर।५।
घनघोर गरजहि घनघटा, जलपरहिंपावसकाल
चहुंओर चमकइ बीजुरी, अति चलै सीरी व्याल
तरुहेठ तिष्ठहिं तब जती, एकांत अचल शरीर
ते साधु मेरे मन वसो, मेरी हरहु पातक पीर।६।
जब शीतमास तुषारसों, दाहै सकल बनराय
जब जमै पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय॥
तब नगन निवसैं, चौहटे, अथवा नदीके तीर।
ते साधु मेरे उर बसो, मेरी हरहु पातक पीर।७।
करजोर 'भूधर' बीनवै, कबमिलहिं वे मुनिराज
यह आश मनकी कब फले, मेरे सरहिं सगरे काज
संसार विषम विदेशमें, जे विना कारण वीर।

१ नदीका जल। २ रास्तेसे। ३ रास्तागीर मुसाफिर। ४ वरसात में। ५ ठंडी पवन। ६ वृक्षोंके नीचे। ७ तलावोंमें।

ते साधु मेरे उर बसो, मेरी हरहु पातक पीर ॥८॥

इति भूधरकृत गुरुस्तुति ॥ १० ॥

(११)

अथ भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ।

राग भरतरी दोहा ।

ते गुरु मेरे मन वसो, जे भवजलधि जिहाज । आप तिरैं पर तार हीं, ऐसे श्रीऋषिराज ॥ ते गुरु० ॥ १ ॥ मोह महारिपु जानिकैं छांड्यो सब घरबार । होय दिगंबर वन वसे, आतम शुद्ध विचार ॥ ते गुरु० ॥ २ ॥ रोग[1] उरग-विल वपु[2] गिण्यो, भोग भुजंग समान । कदली तरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान ॥ ते गुरु० ॥ ३ ॥ रतनत्रय निधि उर धरैं, अरु निरग्रंथ त्रिकाल । मार्‌यो कामखवीसको[3], स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु० ॥ ४ ॥ पंच महाव्रत आदरैं, पांचों सुमति समेत । तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पद हेत ॥ ते गुरु० ५ ॥ धर्म धरैं दशलक्षणी, भावैं भावना सार । सहैं

---

१ रोगरूपी सांपका विल । २ शरीर । ३ राक्षस ।

परीषह बीस है, चारित-रतन-भंडार ॥ ते गुरु० ॥ ६ ॥ जेठ तपै रवि आकरो, सूखैं सरवरनीर शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं[2] नगन शरीर ॥ ते गुरु० ॥ ७ ॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जल, धर-धार । तरुतल निवसैं साहसी, बाजे[3] झंझा-वार ॥ ते गुरु० ॥ ८ ॥ शीत पड़े कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय । ताल तरंगनिके तटै, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ते गुरु० ॥ ९ ॥ इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों कालमंझार । लागे सहज सरूपमैं, तनसों ममत निवार ॥ ते गुरु० ॥ १० ॥ पूरव भोग न चिंतवैं, आगम वांछैं नाहिं । चहुंगतिके दुखसों डरैं, सुरति लगी शिव-माहिं ॥ ते गुरु० ॥ ११ ॥ रंगमहलमैं पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय । ते पच्छिम निशिभूमिमैं सोवैं संवरि काय ॥ ते गुरु० ॥ १२ ॥ गज चढ़ि चलते गरबसों, सेना साजि चतुरंग । निरखि निरखि पग ते धरैं, पालैं करुणा अंग ॥ ते

१ तेजीसे । २ जलावैं । ३ चलती है । ४-[illegible] झंझा कहते हैं

गुरु० ॥ १३ ॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमैं तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढो, भूधर मांगै एह ॥ ते गुरु० ॥ १४ ॥

इति भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ॥११॥

१२

अथ नाथूरामप्रेमीकृत सरस्वतीस्तवन।

शिखरिणी।

जगन्माता ख्याता जिनवरमुखांभोजउदिता।
भवानी कल्याणी मुनिमनुजमानी प्रमुदिता ॥
महादेवी दुर्गा दरनि दुखदाई दुरगती[1]।
अनेका एकाकी द्वयंयुतदशांगी[2] जिनमती ॥१॥
कहैं मातः! तोकों यदपि सबही नादिनिधना[3]।
कथंचित् तौ भी तू उपाजि विनशै यों विवरना ॥
धरे नाना जन्मं प्रथमजिनके बाद अबलों।
भयो त्यों विच्छेदं[4-5] प्रचुर तुव लाखों वरषलों ॥२॥
महावीरस्वामी जब सकलज्ञानी[6] मुनि भये।
विडौजाँके[7] लाये समवसृतमें गौतम गये ॥

---

१ दुःखदाई दुर्गतिको नष्ट करनेवाली। २ द्वादशांगी। ३ अनादिनिधन ४-५ इन अक्षरोंको संस्कृतके नियमानुसार दीर्घ पढना चाहिये। ६ केवलज्ञानी। ७ इन्द्रके बुलाये हुए।

तबै नौकारूपा भवजलधि माहीं अवतरी।
अरूपा निर्वर्णा विगतभ्रम सांची सुखकरी ॥३॥
करै जैसैं मेघ ध्वनि मधुर त्यों ही निरखरी[1]।
खिरी प्यारी प्रानी ग्रहण निजभाषामहं करी ॥
गणेशोंने[2] झेली बहुत दिन पाली मुनिवर[3]।
रही थी पै तोलौं तिन हृदयमें ही धरकर[4] ॥४॥
अवस्था कायाकी दिन दिन घटी दीखन लगी
तथा धीरे धीरे सुबुधि विनशी अंगश्रुतकी ॥
तबै दो शिष्योंको सुगुरु धरसेनार्य मुनिने।
पढाया कर्म-प्राभृत सुखद जाना जगतने ॥५॥
उन्हींने हे मातः! लिखि लिपि करी अक्षरवती।
संवारी ग्रंथोंमें श्रुततिथि मनाई सुखवती[5] ॥
सहारा देते जो नहिं तुमहिं वे यों तिहिं समै।
सदाको सो जाती जग-जलधि-गंभीर-तलमैं[6] ॥६॥
भये पीछे नामी मुनि तिन बचाई विघनतें।
हजारों ग्रंथोंमें रचि रचि रची चारु रुचितें ॥

---

१ निरक्षरी-अक्षररहित। २ गण-धरोंने। ३-४ संस्कृतमें पादांत्य दीर्घ होता है। ५ श्रुतपंचमीका पर्व। ६ धरी।

प्रसारी देशोंमें वर विविध भाषामय करी।
लुभाये मिथ्याती लखि विशद युक्तीयुत खरी ७
नहीं ऐसा कोई विषय जगमें बुद्धिगत है।
तिहारो जो प्यारो नहिं विमल आभूषण अहै ॥
लजै अन्यावाणी रुचिर तुव ये रूप लखिकैं।
धुनैं माथा हा! हा! कराहि चुप होवैं बिलखिकैं।
धरैं हैं जो प्रानी नित जननि! तोको हृदयमें।
करैं हैं पूजा वा मन वचन काया करि नमें ॥
पढावैं देवैं जो लिखि लिखि तथा ग्रंथ लिखवा।
लहैं ते निश्चैसों अमरपदवी मोक्ष अथवा ॥ ९ ॥
थके देवेंद्रादी स्तवन नहिं तेरो कर सके।
करैं तो मा! कैसें हम नित अविद्याकर छके ॥
तथापि स्वच्छन्दी करत अति उत्साहित हमें।
किये तातें 'प्रेमी' पदवरन एकत्र तुकमें ॥ १० ॥

इति सरस्वतीस्तवन ॥ १२ ॥

(१३)

अथ जिनवाणी माताकी स्तुति।

सवैया मत्तगयंद।

वीरहिमाचलतें निकरी, गुरुगौतमके मुख

१। निर्मल अकाट्ययुक्तियोंवाली।-२ यथार्थ

कुंड ढरी है। मोहमहाचल भेद चली, जगकी जडतातप दूर करी है ॥ ज्ञानपयोनिधि मांहि रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है। तो शुचि शारदगंगनदीप्रति, मैं अंजुरी करि सीस धरी है।१।या जगमंदिरमें अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अतिभारी। श्रीजिनकी धुनि दीप शिखा-सम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी। तो किस भांति पदारथपांति, कहां लहते रहते अविचारी। या विधि संत कहैं धनि हैं २ जिन बैन बडे उपकारी।

जा वानीके ज्ञानतैं, सूझहि लोक अलोक।
सो वानी मस्तक चढौ, सदा देतहूं धोक।१।

इति जिनवाणी माताकी स्तुति ॥ १२ ॥

(१४)

अथ निर्वाणकांड।

दोहा।

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥१॥

चोपाई १५ मात्रा।

अष्टापदआदीसुरस्वामि। बासुपूज्य चंपापुरि

नामि ॥ नेमिनाथस्वामी गिरनार । वंदौं भाव भगति उरधार । २ । चरम तीर्थंकर चरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद जिनेसुर वीस । भाव सहित वंदौं निशदीस ।३। वरदतराय रु इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि उंठकोडि । वंदौं भावसहित कर जोडि । ४ । श्रीगिरिनारशिखर विख्यात । कोडि बहत्तर अरु सौ सात ॥ संबुप्रदुम्न कुमर द्वै भाय । अनिरुध आदि नमूं तसु पाय । ५ । रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाडनरिंद आदि गुणधीर ॥ पांच कोडि मुनि मुक्तिमझार । पावागिरि वंदौं निरधार ॥ ६ ॥ पांडव तीन द्रविडराजान । आठकोडि मुनि मुकति पयान ॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस । भावसहित वंदौं निशदीस ॥ ७ ॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये । आठकोडि मुनि औरहिं भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल । तिनके चरण नमूं तिहुं काल ॥ ८ ॥ राम हनू सुग्रीव सुडील । गयग-

१—साढे तीन किरोड़ ।

वारुण्य नील महानील ॥ कोडि निन्याणवे मु-
क्तिपयान । तुंगीगिरि बंदौं धरि ध्यान ॥ ९ ॥
नंग अनंग कुमार सुजान । पांचकोडि अरु अर्ध
प्रमान ॥ मुक्ति गये सिहुनागिरिशीश । ते बंदौं
त्रिभुवनपति ईश ॥ १० ॥ रावणके सुत आदि
कुमार । मुक्ति गये रेवातट सार ॥ कोडि पंच
अरु लाख पचास । ते बंदौं धरि परम हुलास
॥ ११ ॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिमदिशा
देह जँह छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार ।
ऊठकोडि बंदौं भवपार ॥ १२ ॥ बड़वानी बड-
नयर सुचंग । दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ॥
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते बंदौं भवसायर-
तर्ण ॥ १३ ॥ सुवरणभद्रआदि मुनिचार । पावा-
गिरिवर शिखरमझार ॥ चलना नदी तीरके
पास । मुक्ति गये बंदौं नित तास ॥ १४ ॥ फल
होडीबडगाम अनूप । पश्चिमदिशा द्रोणगिरि-
रूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां । मुक्ति गये
बंदौं नित तहां ॥ १५ ॥ बाल महाबाल मुनि
दोय । नागकुमार मिलैं त्रय होय ॥ श्रीअष्टा-

पद मुक्तिमझार । ते बंदौं नित सुरत संभार १६ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढे तीन कोडि मुनिराय । तिनके चरण नमूं चित लाय ॥ १७ ॥ वंसस्थल वन के ढिंग होय । पश्चिमादिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कुलभूषण दिशभूषण नाम । तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥ जसरथराजाके सुत कहे । देशकलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला मुनि कोटिप्रमान । बंदन करूं जोर जुगपान । १९ । समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद । रेसंदीगिरिनयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज । ते वंदौं नित धरमजिहाज । २० । तीन लोकके तीरथ जहां । नितप्रति बंदन कीजे तहां ॥ मन वच कायसहित सिरनाय । बंदन करहिं भविक गुणगाय । २१ । संवत सतरहसौ इकताल । आश्विनसुदि दशमी सुविशाल ॥ 'भैया' बंदन करहिं त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल । २२ । इति ॥

(१५)

अथ आलोचनापाठ ।

दोहा ।

बंदौं पाचों परम गुरु, चौवीसौ जिनराज।
कहूं शुद्ध आलोचना, शुद्धकरनके काज ।१।

सखी छन्द (१४) मात्रा ।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी ॥ तिनकी अब निर्वृति काजा। तुम सरन लही जिनराजा ॥ २ ॥ इक वे ते चउ इंद्री वा। मन रहित सहित जे जीवा॥ तिनकी नहिं करुणा धारी । निरदई है घात विचारी ॥ ३ ॥ समरंभ समारँभ आरँभ। मनवचतन कीने प्रारंभ। कृत कारित मोदन करिकैं। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।४। शत आठ जु इम भेदनतैं। अघ कीने परछेदनतैं ॥ तिन की कहुं कोलौं कहानी। तुम जानत केवलज्ञानी ॥ ५ ॥ विपरीत एकांत विनयके। संशय अज्ञान कुनयके॥ वश होयँ घोर अघ कीने। वचतैं नहि जात कहीने ॥ ६ ॥ कुगुरुनकी

सेवा कीनी । केवल अदयाकरि भीनी ॥ या विध मिथ्यात भ्रमायो । चहुंगति माधि दोष उपायो ॥ ७ ॥ हिंसा पुनि झूठ जु चोरी । परवनितासों हगजोरी ॥ आरंभपरिग्रहभीनो । पुनपाप जु या विधि कीनो ॥ ८ ॥ सपरस रसना घ्रानको । चखु कान विषय सेवनको ॥ बहुकरम किये मन मानी । कछु न्याय अन्याय न जानी ॥ ९ ॥ फल पंच उदंबर खाये । मधु मांस मद्य चित चाहे ॥ नहिं अष्ट मूलगुणधारी । विसन जु सेये दुखकारी । १० । दुइ वीस अभख जिन गाये । सो भी निशिदिन भुंजाये ॥ कछु भेदाभेद न पायो । ज्यों त्यों करि उदर भरायो ११ अनंतान जु बंधी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥ संज्वलन चौकरी गुनिये । सब भेद जु षोडश मुनिये ॥ १२ ॥ परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेदसंजोग ॥ पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम १३ निद्रावश शयन कराई । सुपनेमाधि दोष लगाई ॥ फिर जागि विषयवन धायो । नानाविधि विष-

फल खायो ॥ १४ ॥ कियेऽहार निहार विहारा । इनमैं नहिं जतन विचारा ॥ विन देखी धरी उठाई । विनशोधी भोजन खाई ।१५। तव ही परमाद सतायो । वहुविध विकलप उपजायो ॥ कछु सुधि बुधि नाहिं रही है । मिथ्यामति छाय गई है ॥ १६ ॥ मरजादा तुम ढिंग लीनी । ताहूमैं दोष जु कीनी ॥ भिन भिन अब कैसैं कहिये । तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥ १७ ॥ हा ! हा ! मैं दुठ अपराधी । त्रसजीवनराशि विराधी ॥ थावरकी जतन न कीनी । उरमें करुणा नहिं लीनी ॥ १८ ॥ पृथिवी बहु खोद कराई । महलादिक जागां चिनाई । पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो । पंखातैं पवन विलोल्यो ॥ १९ ॥ हा ! हा ! मैं अदयाचारी । बहु हरितकाय जु विदारी ॥ या माधि जीवनिके खंदा । हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥ हा ! मैं परमादबसाई । विन देखे अगनि जलाई ॥ तामधि जे जीव जु आये । ते हू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥ बीध्यो अन राति पिसायो । ईंधन विन सोधि जलायो ॥ झाडू

ले जागां बुहारी । चींटि आदिक जीव विदारी ॥ २२ ॥ जल छानि जीवानी कीनी । सो हू पुनि डारि जु दीनी ॥ नहिं जलथानक पहुंचाई । किरिया विन पाप उपाई ॥ २३ ॥ जल मल मोरिन गिरवायो । कृमिकुल बहु घात करायो ॥ नदियन बिच चीर धुवाये । कोसनके जीव मराये ॥ २४ ॥ अन्नादिक शोध कराई । ता मैं जु जीव निसराई ॥ तिनका नहिं जतन कराया । गरियालैं धूप डराया ॥ २५ ॥ पुनि द्रव्य कमावन काज । बहु आरंभ हिंसा साज ॥ कीये तिसनावश भारी । करुना नहि रंच विचारी ॥२६॥ इत्यादिक पाप अनंता । हम कीने श्रीभगवंता ॥ संतति चिरकाल उपाई । वानीतैं कहिय न जाई ॥ २७ ॥ ताको जु उदय जब आयो । नाना विध मोहि सतायो ॥ फल भुंजत जिय दुख पावै । वचतैं कैसैं करि गावै ॥ २८ ॥ तुम जानत केवलज्ञानी । दुख दूर करो शिवथानी ॥ हम तो तुम शरन लही है । जिन तारन विरद सही है ॥ २९ ॥ जो गांवपती इक होवै । सो भी दु-

खिया दुख खोवे ॥ तुम तीन भुवनके स्वामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥ ३० ॥ द्रोपदिको चीर बढायो । सीताप्रति कमल रचायो ॥ अंजनसे किये अकामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥३१॥ मेरे अवगुन न चितारो । प्रभु अपनो विरद निहारो ॥ सब दोषरहित करि स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥ ३२ ॥ इंद्रादिक पदवी न चाहूं । विषयनिमें नाहिं लुभाऊं ॥ रागादिक दोष हरीजे । परमातम निजपद दीजे ॥ ३३ ॥

दोहा ।—

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि ।
सब जीवनके सुख बढै, आनंद मंगल होय ॥३४॥
अनुभवमाणिकपारखी, जौहरी आप जिनंद ।
येही वर मोहि दीजिये, चरन सरन आनंद ॥

इति आलोचनापाठ समाप्त ॥ १५ ॥

(१६)

अथ सामायिक पाठ ।

१ । प्रतिक्रमण कर्म ।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी ।

जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी ॥ कोड़ि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ सामायक । धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ॥ १ ॥ हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब । ते सब मनवचकाय योगकी गुप्तिविना लभ ॥ आप समीप हजूरमाहिं मैं खड़ो खड़ो[1] सब । दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥ २ ॥ क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी । दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहि आनी ॥ विना प्रयोजन एकेंद्रिय वि ति चउ पंचेंद्रिय । आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥ आपसमें इक ठौर थापि करि जे दुख दीने । पेलि दिये पगतलें दाबकरि प्राण हरीने ॥ आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक । अरज करों मैं सुनो दोष मेटो दुखदा-यक ॥ ४ ॥ अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय । तिनके जे अपराध भये ते छिमा छिमा किय । मेरे जे अब दोष भये ते छिमो दयानिधि ।

---

१ यदि श्री सामायिकपाठ पढ़ें तो " खड़ी खड़ी " कहना चाहिये ।

यह पडिकोणो कियो आदि षट कर्ममाहिं विधि॥

२ प्रत्याख्यानकर्म ।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे। तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे॥ सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै॥ जा प्रसादतैं मिलै सर्वसुख, दुःख न लाधै॥ ६॥ मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ। किये पाप अतिघोर पापमति होय चित्त दुठ॥ निंदूं हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं। सबविध धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूं॥ ७॥ दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी। सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी॥ जिनवचनामृतधार समावर्तैं जिनवानी। तौहू जीव संहारे धिक धिक धिक हम जानी॥ ८॥ इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञानजमा सब। अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक ह्वै अब॥ गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले। ते सब दोष किये निंदूं अब मनवच तोले॥ ९॥ आलोचनविधथकी दोष लागे जु घनेरे। ते सब दोष विनाश होउ

तुमतैं जिन मेरे ॥ बारवार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता । ईर्षादिकतैं भये निंदिये जे भयभीता ॥ १० ॥

३ सामायिककर्म ।

सब जीवनमैं मेरे समताभाव जग्यो है । सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है ॥ आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांड़ि करिहूं सामायक ॥ संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक ॥ ११ ॥ पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति । पांचहि थावरमाहिं तथा त्रस जीव वसहिं जित ॥ वे इंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रियमाहिं जीव सब । तिनतैं क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब ॥ १२ ॥ इस अवसरमैं मेरे सब सम कंचण अरु त्रण । महल मसान समान शत्रु अरु मित्र हि सम गण ॥ जामन मरण समान जान्नि हम समता कीनी । सामायिकका काल जिते यह भाव नवीनी ॥ १३ ॥ मेरो है इक आतम तामैं ममत जु कीनो । और सबहिं मम भिन्न जानि समतारसभीनो ॥

मातु पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह। मोतैं न्यारे जानि जथारथरूप कर्यो गह ॥ १४ ॥ मैं अनादि जगजालमाहिं फांसि रूप न जाण्यो। एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥ ते अब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी। भवभवको अपराध छिमा कीज्यो करि मरजी ॥ १५ ॥

४। स्तवनकर्म।

नमूं ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्मको। शंभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्मकों। सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पार कर। पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर ॥ १६ ॥ श्रीसुपार्श्व कृतपासनाश भव जास शुद्ध कर। श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर ॥ पुष्पदंत दमि दोषकोष भवि-पोष रोषहर। शीतल शीतलकरन हरन भव-ताप दोषहर ॥ १७ ॥ श्रेयरूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन। वासुपूज्य शतपूज्य वास-वादिक भवभय हन ॥ विमल विमलमतिदेन

अंतगत है अनंत जिन । धर्म शर्म शिवकरन
शांति जिन शांतिविधायिन ॥ १८ ॥ कुंथु
कुंथुमुखजीवपाल अरनाथ जाल हर । मल्लि
मल्लसम मोहमल्लमारण प्रचारधर ॥ मुनिसुव्रत
व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन । नेमि-
नाथ जिन नेमि धर्मरथ माहिं ज्ञानधन ॥ १९ ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्ष रमापति ।
वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥
या विध मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर ।
स्तऊं नमूं हूं बार बार वंदौं शिवसुखकर ॥ २० ॥

५ । वंदनाकर्म ।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति । व-
र्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत ॥ त्रिश-
लातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं । वंदूं नि-
तप्रति कनकरूपतनु पाप निकंदूं ॥ २१ ॥ सि-
द्धारथनृपनंद द्वंद दुखदोष मिटावन । दुरित
दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीवउधारन ॥
कुंडलपुरकरि जन्म जगतजियआनंदकारन ।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन । २२

सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय। बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय॥ दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन। आप वसे शिवमाहिं ताहि बंदौं मनवचतन ॥ २३ ॥ जाके वंदनथकी दोष दुख दूरहि जावे। जाके वंदनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवे ॥ जाके बंदनथकी वंद्य होवैं सुरगनके। ऐसे वीर जिनेश वंदि हूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥ सामायिक षट्कर्ममाहिं वंदन यह पंचम। वंदों वीर जिनेंद्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम ॥ जन्म मरण भय हरो, करो अघ शांति शांतिमय। मैं अघकोष सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६। कायोत्सर्गकर्म।

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई। काय त्यजनमयं होये काय सबकों दुखदाई ॥ पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तरमैं। जिन गृह बंदन करूं हरूं भव पापतिमिर मैं॥ २६ ॥ शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं। आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनवचमदहरिकैं॥ तीन

लोक जिनभवन माहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धदीपमाहीं बंदों जिम॥ २७॥
आठकोड़ि परिछप्पन लाख जु सहस सत्याणू।
चार शतऊपर असी एक जिनमंदिर जाणूं॥
व्यंतर ज्योतिषमाहिं संख्यरहिते जिनमंदिर।
जिनगृह बंदन करूं हरहु मम पाप संघकर॥
२८॥ सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटा-
यक। सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री-
दायक॥ श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम
गुणथानक। यह आवश्यक किये होय निश्चय
दुखहानक॥ २९॥ जे भवि आतम काज क-
रण उद्यमके धारी। ते सब काज विहाय करो
सामायिक सारी॥ राग द्वेष मद मोह क्रोध
लोभादिक जे सब। बुध महाचंद्र विलाय जांय
तातैं कीज्यो अब॥ ३०॥

इति सामायिकपाठ समाप्त॥ १६॥

(१७)

अथ रूपचंदकृत पंचमंगल।

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिनसासनो।

सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो ॥
मंगलकर चउ-संघहिं, पापपणासनो ॥
पापहिंपणासन गुणहिं गरुवा, दोष अष्टादश-रहिउ ॥
धरिध्यान करमविनासि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ॥
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं ।
त्रैलोकनाथ सु देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १ ॥

१। गर्भकल्याण।

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान-परवान, सु इंद्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी ॥
अति बनी पौरि पगार परिखा, सुवन उपवन सोहए ।
नर नारि सुंदर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहए ॥
तहं जनकगृह छहमास प्रथमहिं, रतनधारा बरसियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सब विधि हरसियो ॥

सुरकुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो ।
केहरि केसरशोभित, नख सिखसुंदरो ॥
कमलाकलस-न्हवन, दुइदाम सुहावनी ।
रविससिमंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥

पावनी कनक घट जुगम पूरन, कमलकलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमरविमान फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई।
रुचि रतन रासि दिपंत दहन सु, तेजपुंज विराजई॥ ३॥

ये सखि सोरह सुपने सूती सयनहीं।
देखे माय मनोहर, पच्छिम-रयनहीं॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहँ भासियो॥
भासियो फल तिहिं चिंति दंपति, परम आनंदित भये।
छहमासपरि नवमास पुनि तहँ, रैन दिन सुखसों गये॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥ ४॥

२। जन्मकल्याणक।

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो।
तिहूँलोक भयो छोभित सुरगन भरमियो॥
कल्पवासिघर घंट, अनाहद वज्जियो।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जियो।
गज्जियो सहजहि संख भावन-भुवन सबद सुहावने।
वितरनिलय पटु पटह बज्जहि कहत महिमा क्यों बने॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचै जानियो।
धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो॥ ५॥

जोजन लाख गयंद, वदन-सो निरमए ।
वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि कमलिनि कमल, पचीस विराजहीं ॥
राजहीं कमलिनी कमलऽठोतर, सौ मनोहर दल बने ।
दलदलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहए ।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहए ॥ ६ ॥
तिहि करि हरि चढ़ि आयउ, सुरपरिवारियो ।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची ।
मायामइ सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची ॥
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपत न हूजिये ॥
तब परम हरषित, हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये ॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ ।
ईसानइंद्र सु चंद्रछवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥
सनतकुमार महेंद्र, चमर दुइ ढारहीं ।
सेस सक्र जयकार, सबद उचारहीं ॥
उच्छवसहित चतुरविधि, सुर हरषित भये ।

---

१ पूरन किये, बनाये ।

जोजन सहस निन्यानवे, गगन उलंघिगये ॥
लंघि गये सुरगिरि जहां पांडुक,-वन विचित्र विराजहीं ॥
पांडुकसिला तहं अर्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी।
वर अष्ट-मंगल-कनक कलसनि सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥
रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरव मुख तहं, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने।
दुंदुभि प्रमुख मधुरधुनि, अवर जु बाजने ॥
बाजने बाजहिं सची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं
सौधर्म अरु ईसानइंद्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥
वदन-उदर-अवगाह, कलसगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोत्तर कलसा, प्रभुके सिर ढरै।
पुनि सिंगार प्रमुख आ,-चार सबै करै ॥
करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि पुनि मातहिं दए।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गए ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥१०॥

३ । तप कल्याणक ।

श्रमजलरहित सरीर, सदा सब मलरहिउ ।
छीर-वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ ॥
प्रथम सार संहनन , सुरूप विराजहीं ।
सहज सुगंध सुलच्छन,-मंडित छाजहीं ॥
—छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन,-रुचिर उचित जु नित नए ।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगए ॥ ११ ॥
भवतन-भोग-विरत्त, कदाचित चिंतए ।
धन जीवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्तए ॥
कोऊ न सरन मरनादिन. दुख चहुंगति भरयो ।
सुखदुखएकहिभोगते,जिय विधिवसपरयो ॥
परयो विधिवस आन चेतन, आन जड जु कलेवरो ।
तन असुचि परतैं होय आस्रव, परिहरेतैं संवरो ॥
निरजरा तपबल होय, समकित,-विन सदा त्रिभुवन भम्यो ..
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥
ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया ॥

स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकरि, तिन समुझाइया ॥

समुझाय प्रभुको गये निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्र विचित्र सिविका, कर सुनंदन-वन लियो ॥
तहं पंचमुट्ठी लौंच कीनो, प्रथम सिद्धनि नुति करी ।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिगह परिहरी ॥ १३ ॥

मणिमयभाजन केस, परिट्ठिय सुरपती ।
छीर-समुद-जल खिपकरि, गयो अमरावती ॥
तप संयमबल प्रभुको, मनपरजय भयो ।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहं गयो ॥

गयो कछु तहं काल तपबल, रिद्धि वसु विधि सिद्धिया ।
जसु धर्मध्यानबलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया ॥
खिपि सातयेंगुण जतनविन तहं, तीन प्रकृति जु बुधि बढिउ ।
करि करण तीन प्रथम सुकलबल, खिपकसेनी प्रभु चढिउ ॥ १४ ॥

प्रकृति छतीस नवें गुण, थान विनासिया ।
दसवें सूच्छमलोभ, प्रकृति तहं नासिया ॥
सुकल ध्यान पद दूजो पुनि प्रभु पूरियो ।
बारहवें गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियो ॥

चूरियो त्रेसठ प्रकृति इहविध, घातिया करमनि तणी ।
तप कियो ध्यानपर्यंत बारह—विध त्रिलोकसिरोमणी ॥
निःक्रमण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १५ ॥

४। ज्ञानकल्याणक ।

तेरहवैं गुण—थान, सयोगि जिनेसुरो ।
अनंतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तब धनपति, बहुबिधि निरमयो ॥
आगमजुगतिप्रमान, गगनतल परिठयो ॥
परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभामंडप सोहए ।
तिहिं मध्य बारह बने कोठे, वनक सुरनर मोहए ॥
मुनि कल्पवासिनि अरजिका पुनि,ज्योति-भौमि-भवनतिया ॥
पुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पसुनि[1] कोठे बैठिया ॥१६॥
मध्यप्रदेस तीन, मणिपीठ तहां बने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर सहित त्रिभुवन मोहए ।
अंतरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए ॥
सोहए चौसठि चमर ढरत, असोकतरु तल छाजए ।
पुनि दिव्यधुनि प्रतिसबदजुत तहं, देवदुंदुभि बाजए ॥
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि छाजए ।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥ १७ ॥
दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहूं दिसी ।
गगन गमन अरु प्राणी, वध नहिं अहनिसी ॥
निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदीसए ।

---

1 पशु ।

आनन चार चहूंदिसि, सोभित दीसए ॥
दीसय असेस विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना ।
छायाविवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका बना ॥
नहि नयन पलक पतन कदाचित, केस नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछयजनित अतिसय, दस विचित्र विराजहीं ॥ १८ ॥

सकल अरथमय मागधि—भाषा जानिये ।
सकल जीवगत मैत्री—भाव वखानिये ॥
सकल रितुज फलफूल, वनस्पति मन हरै ।
दरपनसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरै ॥
अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता ।
जोजन प्रमाण धरा सुमार्जहि, जहां मारुतदेवता ॥
पुनि करहिं मेघकुमार गंधो,—दक सुवृष्टि सुहावनी ।
पदकमलतर सुर खिपहिं कमलसु, धरणि ससिसोभा वनी ॥ १९ ॥

अमल गगन तरु अरु दिसि, तहं अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चले आगे, रवि जहं लाजहीं ।
पुनि भृंगार-प्रमुख वसु, मंगल राजहीं ॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने ॥
तब इंद्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी ।
धर्मोपदेस दियो तहां, उच्चरिय बानी जिनतनी ॥ २० ॥

छुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने ।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी ॥
गनिये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरञ्जनो ।
नव परमकेवललब्धिमण्डित, सिवरमँनि–मनरंजनों ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि ' रूपचंद ' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ।

५। निर्वाण कल्याणक

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो ।
भव्यनिप्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो ॥
भवभयभीत भविकजन सरणै आइया ।
रत्नत्रयलच्छन सिवपंथ लगाइया ॥
लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय सुकल जु पूरियो ।
तजि तेरहें गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो ॥
पुनि चौदहे चौथे सुकलबल बहत्तर तेरह हती ।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो समयमें पंचमगती ॥ २२ ॥
लोकसिखर तनुवात,–वलयमहँ संठियो ।
धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगैं कियो ॥
मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसो ।

किमपि हीन निजतनुतैं, भयो प्रभु तारिसो ॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी ।
निश्चयनये अनंतगुणा, विवहार नय वसुगुणमयी ॥
वस्तु स्वभाव विभावविरहित सुद्ध परणति परिणयो ।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्धपरमातम भयो ॥ २३ ॥
तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर गये ।
रहे सेस नखकेस-रूप, जे परिणये ॥
तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो ।
मायामइ नखकेसरहित, जिनतनु रच्यो ॥
रचि अगर चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्यजिन जयकारियो ।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविधि संस्कारियो ॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥
मैं मतिहीन भगतिवस, भावन भाइया ।
'मंगलगीतप्रबंध' सु, जिनगुण गाइया ॥
जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं ।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं आठो सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीत जो लावहीं ।
भ्रमभाव छूटै सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होहिं मंगल नित नये ।

भणि ' रूपचंद ' त्रिलोकपति जिनदेव चउसंघहिं गये ॥

इति रूपचंदकृत पंचमंगल समाप्त ॥ १७ ॥

(१८)

अथ हरजसराय कृत अभिषेक पाठ ।

दोहा ।

जय जय जयवंते सदा, मंगलमूल महान ।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान ॥

ढाल मंगलकी छंद गीता और अडिल्ल ।

श्रीजिन जगमें ऐसो, को बुधवंत जू ।
जो तुम गुणवरनानि करि पावै अंत जू ॥
इंद्रादिक सुर चार,—ज्ञानधारी मुनी ।
कहि न सकै तुम गुणगण, हे त्रिभुवनधनी ॥

अनुपम अमित तुम गुणानि वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है। किमि धरैं हम उरकोशमें सो अकथ गुणमणिराश है ॥ पै निज प्रयोजन-सिद्धिकी तुम नामहीमें शक्ति है । यह चित्तमें सरधान यातैं, नामहीमैं भक्ति है ॥ १ ॥

ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने ।
कर्ममोहनी अंतराय चारौ हने ॥

लोकालोक विलोको केवलज्ञानमें।
इंद्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें॥
तब इंद्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरनयुत बंदत-भयो। तुम पुन्यको प्रेर्यो हरी ह्वै, मुदित धनपतिसौं चयो॥ अब वेगि जाय रचौ समवसृति, सफल सुरपदकौं करो। साक्षात श्रीअरहंतके, दर्शन करौ कलमषहरो॥ २॥
ऐसे वचन सुने सुरपतिके धनपती।
चल आयो ततकाल, मोद धारे अती॥
वीतराग छवि देखि, शब्द जय जय चयौ।
दे प्रदक्षिणा बार बार, बंदत भयो॥
अति भक्तिभीनो नम्रचित ह्वै, समवसरण रच्यौ सही। ताकी अनुपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ नही॥ प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजही। नग-जड़ित गंधकुटी मनोहर, मध्यभाग विराजही॥ ३॥
सिंहासन तामध्य, बन्यो अदभुत दिपै।
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥
तीन छत्र सिर शोभित, चौसठ चमरजी।

महाभक्तियुत ढोरत है, तहां अमरंजी ॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अंतरीच्छ विराजिया । यह वीतरागदशा प्रतच्छ, विलोकि भविजन सुख लिया ॥ मुनि आदि द्वादश सभाके, भवि जीव मस्तक नायकैं । वहु भांति वारंवार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं ॥ ४ ॥

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही ।
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं ॥
जन्म जरा मृति अरति, शोक विस्मय नसै ।
राग द्वेष निद्रा मद, मोह सवैं खसै ॥

श्रम विना श्रमजलरहित पावन, अमल जोतिस्वरूपजी ॥ शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी ॥ ऐसे प्रभूकी शांतिमुद्रा,को न्हवन जलतैं करैं । 'जस' भक्तिवश मन उक्तितैं हम, भानु ढिग दीपक धरैं ।५।

तुम तौं सहज पवित्र, यही निश्चय भयो ।
तुम पवित्रता हेत, नहीं मज्जन ठयौ ॥
मैं मलीन रागादिक, मलतैं ह्वै रह्यो ।
महा मलिन तनमें वसु,विधिवश दुख सह्यो ॥

बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई। तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु वांछा चित ठई ॥ अब अष्ट कर्म विनास सब मल,- रास रागादिक हरो। तनरूप कारागेहतैं उद्धार, शिववासा करो ॥ ६ ॥

मैं जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये।
आवागमनविमुक्त रागवर्जित भये ॥
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय प्रमानतैं जानि, महा साता लही ॥

पापाचरण तजि न्हवन करतौ, चित्तमें ऐसे धरूं। साक्षात श्रीअरहंतकौ, मानौं न्हवन परसन करूं ॥ ऐसे विमल परिणाम होतैं, अशुभ परणति नासतैं। विधि अशुभ नासि शुभबंधतैं, ह्वै शर्म सब विधि तासतैं ॥ ७ ॥

पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं।
पावन पानि भये तुम, चरननि परसतैं ॥
पावन मन ह्वै गयो, तिहारे ध्यानतैं।
पावन रसना मानी, गुणगण गानतैं ॥
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरणधनी।

मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी ॥ धन धन्य ते बडभागि भवि, तिन नींव शिवघरकी धरी । वर क्षीरसागर आदि जल-मणि,–कुंभ भरि भक्ती करी ॥ ८ ॥

विघनसघनवनदाहन, दहन प्रचंड हो ।
मोह महातम दलन, प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो ।
जगविजयी जमराज, नाश ताको करो ॥
आनंदकारण दुःखनिवारण, परम मंगलमय सही
मोसौं पतित नहिं और तुमसौ, पतिततार सुन्यो नहीं ॥ चिंतामणी पारस कलपतरु, एक भव सुखकार ही । तुम भक्तिनवका जे चढें, ते भये भवदधि पार ही ॥ ९ ॥

दोहा ।

तुम भवदधि तरि गये, भये निकल अविकार ।
तारतम्य इस भक्तिको, हमै उतारो पार ॥ १० ॥

इति हरजसराय कृत अभिषेकपाठ ॥ १८ ॥

(१९)

अथ पंचामृत—अभिषेकपाठ ।

श्रीजिनवर चौबीस वर, कुनयध्वांतहर भान ।

अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठौ इह थान ।१।

नाराच छंद ।

गिरीश सीस पांडुपै, सचीस ईस थापियो ।
महोत्सवो अनंदकंदको, सबै तहां कियो ॥
हमैं सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतु आपना ।
यहां करैं जिनेंद्रचंद्रकी सुबिंबथापना ॥ २ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिंबकी स्थापना करना)

सुंदरीछंद ।

कनकमणिमयकुंभ सुहावने । हरि सुछीर भरे अति पावने । हम सुवासित नीर यहां भरैं । जगत पावन-पांय तरैं धरैं ॥ ३ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीताछंद ।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो ।
आकृष्टभृंगसमूह गंग-समुद्भवो अति भावनो ॥
मणिकनककुंभ निसुंभकिल्बिष, विमल शीतल भरि धरौं । श्रम स्वेद मल निरवार जिन, त्रय-धार दे पाँयनि परौं ॥ ४ ॥

(शुद्ध जलकी तीन धारा जिनबिंबपर छोडना)

अति मधुर जिनधुनिसम सुप्राणित, प्राणि-

वर्ग स्वभावसौं। बुधाचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसौं। तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रत्नकुंभविषैं भरौं। यमत्रासतापनिवार जिन, त्रयधार दे पाँयनि परौं ॥ ५ ॥

(इक्षुरसकी धारा)

निष्टप्तक्षिप्तसुवर्णमददमनीय: ज्यौं विध जैनकी आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा, सु यौं जिय-सैनकी ॥ तत्कालमंथित, क्षीर-उत्थित, प्राज्य मणिझारी भरौं। दीजै अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दे पाँयनि परौं ॥ ६ ॥

(घृतरसकी धारा)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावन सोहनो। क्लीबत्वहर बल धरन पूरन, पयसकल मनमोहनो ॥ कृतउष्ण गोथनतैं समाहृत, घट जटित मणिमैं भरौं। दुर्बल दशा मो मेट जिन-त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ७ ॥

(दुग्धकी धारा)

वर विशद जैनाचार्य ज्यौं मधुराम्लकर्कशता-धरैं। शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनों

अनुसरैं ॥ गोदधि सुमणि भृंगार पूरन लायकर आगैं धरौं। दुखदोषकोष निवार जिन त्रयधार दे पांयनि परौं ॥ ८ ॥

(दहीकी धारा)

दोहा।

सर्वौषधी मिलायके, भरि कंचन भृंगार ।
यजौं चरण त्रयधार दे, तार तार भवतार ॥ १ ॥

(सर्वौषधिकी धारा)

इति पंचामृताभिषकपाठ ॥ १९ ॥

---

(२०)

अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा।

अडिल्ल छंद।

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुतसिद्धांत जू ।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुरपंथ जू ॥
तीन रतन जगमांहिं सो ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥
पूजौं पद अरहंतके, पूजौं गुरुपद सार ।
पूजौं देवी सरसुती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम संनिहितो भव भव । वषट्

गीता छंद ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वंदनीक सुपद-प्रभा। अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा ॥ वर नीर छीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं । अरहंतश्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ।

मलिनवस्तु हरलेत सब जलस्वभाव मलछीन ।
जासौं पूजौं परमपद देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जे त्रिजग उदरमंझार प्राणी तपत अति दुद्धर खरे। तिन अहितहरन सुवचन जिनके परम शीतलता भरे ॥ तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं। अरहंत श्रुत-सिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ २ ॥

चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन ।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

यह भवसमुद्रअपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥ उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ३॥
तंदुल सालि सुगंध अति परम अखंडितबीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

(यहांपर अक्षतोंके चढानेमें तीन पुंज करने चाहियें अधिक नहीं)

जे विनयवंत सुभव्य–उरअंबुज–प्रकाशन भान हैं। जे एकमुखचारित्र भाषहिं, त्रिजगमाहिं, प्रधान हैं॥ लहि कुंद कमलादिक पहुप भवभव कुवेदनसौं बचूं। अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं॥ ४॥
विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमरजासआधीन।
तासौं पूजौं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥४॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अति सबल मदकंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है। दुस्सह भयानक तास नाशनकों सु गरुड समान है॥ उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्यकरि घृतमें पचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥ ५॥

नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥५॥

ओंह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहतिमिर महाबली। तिहिं कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली॥ इहभांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं। अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ६॥

स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरिहीन
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥६॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसैं । वर धूप तासु सुगंधताकरि सकल परिमलता हंसैं ॥ इहभांति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलन मांहि नहीं पचूं । अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ७ ॥

अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन ।
जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥

ओंह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं । मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुण सार हैं ॥ सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, सकल अम्रतरस सचूं । अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ ८ ॥

जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण–रसलीन ।
जासौं पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ८ ॥

ओंह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं । वर धूप निरमल फल विविध, बहु

जनमके पातक हरूं ॥ इहभाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूं । अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ ९ ॥

वसुविधि अर्घ सँजोयकैं, अति उछाह मन कीन ।
जासौं पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

अथ-जयमाला ।

देवशास्त्रगुरुरतनशुभ, तीनरतन करतार ।
भिन्न २ कहुं आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥ १॥

पद्धड़ि छंद ।

चउकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि । जीते अ-ष्टादशदोषराशि ॥ जे परम सुगुण हैं अनँत धीर । कहवतके छयालीस गुण गंभीर ॥ २ ॥ शुभ स-मवशरणशोभा अपार । शत इंद्र नमत कर शी-सधार ॥ देवाधिदेव अरहंतदेव । वंदौं मनवच-तनकरि सु सेव ॥ ३ ॥ जिनकी धुनि है ओं-काररूप । निरअक्षरमय महिमा अनूप ॥ दश अष्ट महाभाषा समेत । लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥ सो स्यादवादमय सप्तभंग । गण-

धर गूंथें बारह सु अंग ॥ रवि शशि न हरै सो तम हराय । सो शास्त्र नमौं बहु प्रीति ल्याय ॥ ५ ॥ गुरु आचारज उवझाय साध । तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध ॥ संसारदेह वैराग्यधार । निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥ गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस । भवतारनतरनजिहाज ईस । गुरुकी महिमा वरनी न जाय । गुरुनाम जपौं मनवचनकाय ॥ ७ ॥

सोरठा ।

कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति विना सरधा धरै ।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवे ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

इति देवशास्त्रगुरुकी पूजा ॥ २० ॥

(२१)

अथ शेष अर्घ ।

विद्यमान तीर्थंकरोंका अर्घं ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभवृषभानन-अनंतवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचंद्राननचंद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजितवीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो-ऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अकृत्रिमचैत्यालयोंका अर्घ ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकी-
गतान् वंदे भावनव्यंतरान्द्युतिवरान्कल्पामरा-
न्सर्वगान् । सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः
फलैर्, नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां
शांतये ॥ २ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

सिद्धोंका अर्घ ।

गंधाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चंदनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ।
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये सि-
द्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥३॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

सोलहकारणका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः

धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

दशलक्षण धर्मका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः । धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भवोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

रत्नत्रयका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः । धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

इति शेष अर्घ ॥ २१ ॥



(२२)

अथ शांतिपाठ, विसर्जन भाषा ।

चौपाई १६ मात्रा ।

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी । शीलगुण-
व्रतसंयमधारी ॥ लखन एक सौ आठ विराजैं ।
निरखत नयन कमलदल लाजैं ॥ १ ॥ पंचम
चक्रवर्तिपदधारी । सोलम तीर्थंकर सुखकारी ॥
इंद्रनरेंद्रपूज्य जिननायक । नमौं शांतिहितशांति
विधायक ॥ २ ॥ दिव्य विटप पहुपनकी वरषा ।
दुंदुभि आसन वाणी सरसा ॥ छत्रचमरभामंडल
भारी । ये तुव प्रातिहार्य मनहारी । ३ । शांति जि-
नेश शांति सुखदाई । जगतपूज्य पूजौं शिरनाई ।
परमशांति दीजे हम सबको । पढैं तिन्हैं, पुनि
चार संघको ॥ ४ ॥

वसंततिलका ।

पूजैं जिन्हैं मुकुट हार किरीट लाके ।
इंद्रादिदेव अरु पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वरवंशजगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥ ५ ॥

इन्द्रवज्रा

संपूजकोंको प्रतिपालकोंको ।
यतीनको औ यतिनायकोंको ॥
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले ।
कीजे सुखी हे जिन शांतिको दे ॥ ६ ॥

स्रग्धरा ।

होवे सारी प्रजाको सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा । होवे वर्षा समैपै तिल भर न रहे व्याधियोंका अंदेशा ॥ होवे चोरी न जारी सुसमय वरते हो न दुष्काल भारी । सारे ही देश धारैं जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥७॥

दोहा ।

घातिकर्म जिन नाशकरि पायो केवलराज ।
शांति करो सब जगतमें वृषभादिक जिनराज ॥

मंदाक्रांता ।

शास्त्रोंका हो पठन सुखदा लाभ सत्संगतीका । सद्वृत्तोंका सुजस कहके, दोष ढांकूं सभीका ॥ बोलूं प्यारे वचन हितके, आपका रूप ध्याऊं । तौलौं सेऊं चरन जिनके मोक्ष जौंलौं न पाऊं ॥ ९ ॥

आर्या ।

तवपद मेरे हियमें ममहिय तेरे पुनीत चरणोंमें ।
तबलों लीन रहो प्रभु, जबलों पाया न मुक्ति-
पद मैंने ॥ १० ॥ अक्षरपद मात्रासे, दूषित जो
कछु कहा गया मुझसे । क्षमा करो प्रभु सो सब,
करुणा करि पुनि छुड़ाउ भवदुखसे ॥ ११ ॥ हे
जगबंधु जिनेश्वर, पाऊं तव चरण शरण बलि-
हारी । मरण-समाधि सुदुर्लभ, कर्मोंका क्षय
सुबोध सुखकारी ॥ १२ ॥

परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

अथ विसर्जनपाठ ।

दोहा ।

विनजाने वा जानके, रही टूट जो कोय । तुव
प्रसादतैं परमगुरु, सो सब पूरन होय ॥ १ ॥
पूजनविधि जान्यों नहीं, नहिं जान्यों आह्वान ।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान ॥
॥ २ ॥ मंत्रहीन धनहीन हूं, क्रियाहीन, जिन-
देव । क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणकी सेव
॥ ३ ॥ आये जो जो देवगन, पूजे भक्तिप्र-

मान । सो अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥ ४ ॥

इति शांतिपाठ विसर्जन समाप्त ॥ २२ ॥

(२३)

अथ भाषा स्तुतिपाठ ।

तुम तरन तारन भवनिवारन, भविकमन-आनंदनो । श्रीनाभिनंदन, जगत वंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥ १ ॥ तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पदपूजा करूं । कैलाशगिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं ॥ २॥ तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली । यह विरद सुनकर सरन आयो, कृपा कीजे नाथजी ॥ ३ ॥ तुम चंद्रवदन सुचंद्रलच्छन, चंद्रपुरी परमेश्वरो । महासेननंदन जगतवंदन चद्रनाथ जिनेश्वरो ॥४॥ तुम शांति पांच कल्याण पूजों, शुद्ध मनवचकाय जू । दुरभिक्ष चोरी पाप नाशन, विघन जाय पलाय जू॥५॥ तुम बालब्रह्म विवेकसागर भव्यकमल विका-

सनो । श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापति-मिरविनाशनो ॥ ६ ॥ जिन तजी राजुल राज कन्या, कामसैन्या वश करी । चारित्ररथ चढ़ि भये दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥७॥ कंदर्प दर्प सुसर्प लच्छन, कमठ शठ निर्मद कियो । अश्वसे-ननंदन जगतबंदन, सकल संघ मंगल कियो॥८॥ जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमानविदारकैं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, मैं नमों शिर धारकैं ॥९॥ तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो । सिद्धार्थनंदन जगत बंदन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥ त्रय छत्र सोहैं सुर नर मोहैं, वीनती अवधारिये । कर जोड़ि सेवक वीनवै, आवागमन निरवारिये ॥ ११ ॥ अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों । कर जोरि यों वरदान मांगों, मोक्षफल जावत लहों ॥ १२ ॥ जो एकमाहीं एक राजै, एकमाहिं अनेकनो । इक अनेककी नहीं संख्या, नमो सि-द्धनिरंजनो ॥ १३ ॥

चौपाई ।

मैं तुम चरणकमलगुण गाय । वहुविधि भक्ति करी मन लाय ॥ जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि । यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ १४ ॥ कृपा तिहारी ऐसी होय । जामन मरन मिटावो मोय ॥ बार बार मैं विनती करूं । तुम सेवत भवसागर तरूं । नाम लेत सव दुख मिट जाय । तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय । तुम हो प्रभु देवनके देव । मैं तौ करूं चरण तव सेव ॥ १६ ॥ मैं आयो पूजनके काज । मेरो जनम सफल भयो आज । पूजा करकें माऊं शीश । मुझ अपराध छमहु जगदीश ॥ १७ ॥

दोहा ।

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी वान । मो गरीबकी वीनती सुन लीज्यो भगवान ॥ १८ ॥
विन मतलब वहुते अधम, तार दये स्वयमेव ॥ त्यों मेरा कारज सफल, कर देवनके देव ॥ १९ ॥
जैसी महिमा तुमविषै, और धरे नाहिं कोय । जो सूरजमें ज्योति है तारनमें नहि सोय ॥ २० ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय ।

ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ११
बहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजा विधि जान्यो नहीं, सरन राखि भगवान २२

इति भाषास्तुतिपाठ समाप्त ॥ २३ ॥

(२४)

अथ हेमराज कृत भक्तामर स्तोत्र।

दोहा।

आदिपुरुष आदीशजिन, आदिसुविधिकरतार।
धरमधुरंधरपरमगुरु, नमहुं आदिअवतार ॥ १ ॥

चौपाई।

सुरनत मुकुट रतनछविकरैं। अंतर पापतिमिर सब हरैं ॥ जिनपद वंदों मन वच काय। भव जलपतित-उधरनसहाय ॥ १ ॥ श्रुतपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव ॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी वरनो गुनमाल ॥ २ ॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। होय निलज थुति-मनसा कीन ॥ जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै ॥ ३ ॥ गुनसमुद्र तुम गुन अविकार। कहत न सुरगुरु

पावै पार ॥ प्रलयपवनउद्धत-जलजंतु । जलधि तिरै को भुजबलवंत ॥ ४ ॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं । भक्तिभाववश कछु नहिं डरूं ॥ ज्यौं मृग निजसुत पालन हेत । मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥ ५ ॥ मैं शठ सुधी हँसनको धाम । मुझ तुव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों पिक अंब कली परभाव । मधुऋतु मधुर करै आराव ॥ ६ ॥ तुमजस जंपत जिन छिनमाहिं । जनमजनमके पाप नशाहिं ॥ ज्यों रवि उगै फटै ततकाल । अलिवत नील निशातमजाल ॥ ७ ॥ तुमप्रभावतैं करहुं विचार । होसी यह थुति जनमनहार ॥ ज्यों जल कमल पत्रपै परै । मुक्ताफलकी द्युति विस्तरै ॥ ८ ॥ तुमगुन महिमा हत दुखदोष । सो तो दूर रहो सुखपोष ॥ पापविनाशक है तुम नाम । कमल-विकाशी ज्यों रविधाम ॥ ९ ॥ नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत । तुमसे तुम गुण वरणत संत ॥ जो अधीनको आप समान । करै न सो निंदित धनवान ॥ १० ॥ इकटक जन तुमको अविलोय । औरविषैं रति करै न सोय ॥

को करि छीरजलधि जलपान । छारनीर पीवै मतिमान ॥ ११ ॥ प्रभुतुम वीतराग गुनलीन । जिन परमाणु देह तुम कीन ॥ हैं तितने ही ते परमानु । यातैं तुमसम रूप न आनु ॥ १२ ॥ कहँ तुममुख अनुपम अविकार । सुरनरनाग नयन मनहार ॥ कहां चंद्रमंडल सकलंक । दिन में ढाकपत्र सम रंक ॥ १३ ॥ पूरनचंद्र जोति छविवंत । तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एकनाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरत को करे निवार ॥ १४ ॥ जो सुरतिय विभ्रम आरंभ । मन न डिग्यो तुम तो न अचंभ ॥ अचल चलावै प्रलय समीर । मेरुशिखर डगमगय न धीर ॥ १५ ॥ धूमरहित बाती गत नेह । परकाशै त्रिभुवन घर येह ॥ वातगम्य नाहीं परचंड । अपर दीप तुम बलो अखंड ॥ १६ ॥ छिपहु न लुपहु राहु कि छाहिं । जगपरकाशक हो छिनमाहिं ॥ घनअनवर्त्त दाह विनिवार । रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥ १७ ॥ सदा उचित विदलिततममोह । विघटित मेघ राहु अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरव चंद

जगत-विकाशी जोति अमंद ॥१८॥ निशदिन शशिरविको नहिं काम । तुम मुखचंद हरै तम धाम ॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज । सजलमेघतैं कौनहुं काज ॥१९॥ जो सुबोध सोहै तुममांहिं । हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो दुति महारतनमें होय । काचखंड पावै नहिं सोय ॥ २० ॥

छंद नाराच ।

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ।
कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखिया,
मनोग चित्तचोर और भूलहू न देखिया ॥२१॥
अनेक पुत्रवंतिनी नितंविनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै,
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो,
कहैं मुनीश अंधकार नाशको सुभान हो ।
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके,
न और मोख मोखपंथ देव तोहि टालके ॥२३॥

अनंत नित्य चित्तके अगम्य रम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो,
महेश काम केतु जोग ईस जोग ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥
तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धके प्रमाणतैं,
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रियै विधानतैं।
तुही विधात है सही सुमोख पंथ धारतैं,
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥२५॥
नमो करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो,
नमों करूं सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो।
नमो करूं भवाब्धिनीरराशिशोखहेतु हो,
नमो करूं महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ॥२६॥

चौपाई।

तुम जिन पूरनगुनगन भरे। दोष गरवकरितुम परिहरे॥ और देवगन आश्रय पाय। सुपन न देखे तुम फिर आय ।२७। तरुअशोकतर किरन उदार। तुमतन शोभित है अविकार॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत। दिनकर दिपै तिमिरनिहनंत ॥ २८ ॥ सिंहासन मनिकिरनविचित्र।

तापर कंचनवरन पवित्र ॥ तुमतन शोभित किरनविथार । ज्यों उदयाचल रवितमहार ॥२९॥ कुंदपुहुपसितचमर ढरंत । कनक वरन तुमतन शोभंत ॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति । झरना झरैं नीर उमगांति ॥ ३० ॥ ऊँचे रहे सूर दुति लोप । तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोक की प्रभुता कहैं । मोती झालरसों छवि लहैं ॥ ३१ । दुंदुभि शब्द गहर गंभीर । चहुंदिश होय तुम्हारे धीर ॥ त्रिभुवन जन शिवसंगम करैं । मानों जय जय रव उच्चरैं ॥ ३२ ॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट । विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट ॥ देव करैं विकसित दलसार । मानों द्विजपंकति अवतार ॥ ३३ ॥ तुमतन-भामंडल जिनचंद । सब दुतिवंत करत हैं मंद ॥ कोटि शंख रवितेज छिपाय । शशिनिरमलनिशि करै अछाय ॥३४॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत । परमधरमउपदेशनहेत ॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध । सबभाषागर्भित हितसाध ॥ ३५ ॥

दोहा ।

विकसितसुवरनकमलद्युति, नखद्युतिमिल चमकाहिं। तुमपद पदवी जहं धरैं, तहं सुर कमल रचाहिं ॥ ३६ ॥ ऐसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय । सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागन होय ॥ ३७ ॥

षट्पद ।

मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं ।
तिन सुन शब्द प्रचंड, क्रोध उद्धत अति धारैं ।
कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै ।
ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥
देखि गयंद न भयकरै, तुमपद महिमा लीन ।
विपतिरहितसंपतिसहित, वरतै भक्तअदीन ३८
अति मदमत्त गयंद, कुंभथल नखन विदारै ।
मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै ॥
बांकी दाढ विशाल, वदनमें रसना लोलै ।
भीम भयानकरूप देखि, जन थरहर डोलै ॥
ऐसे मृगपति पग तलें, जो नर आयो होय ।
शरन गये तुम चरनकी, बाधा करै न सोय ३९

प्रलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर ।
वमै फुलिंग सिखा, उतंग पर जलैं निरंतर ॥
जगत समस्त निगल्ल, भस्मकरहैगी मानो ।
तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुंदिशा उठानो ॥
सो इक छिनमें उपशमै, नामनीर तुम लेत ॥
होय सरोवर परिनमैं, विकसित कमल समेत ४०
कोकिलकंठ समान, श्यामतन क्रोध जलंता ।
रक्तनयन फुंकार, मारविषकन उगलंता ।
फनको ऊँचा करे, वेग ही सनमुख धाया ।
तुव जन होय निशंक, देख फनपतिको आया ॥
जो चांपै निज पांवतें, व्यापै विष न लगार ।
नागदमनि तुम नामकी, है जिनके आधार ४१
जिस रनमाहि भयान, शब्द कर रहे तुरंगम ।
घनसे गज गरजाहिं, मत्त मानों गिरि जंगम॥
अति कोलाहलमांहि, वात जंह नाहिं सुनीजै ।
राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय ।
ज्यों दिनकरपरकाशतैं, अंधकारविनशाय ४२
मारे जहां गयंद, कुंभ हथियार विदारै ।

उमगे रुधिर प्रवाह, वेग जलतैं विस्तारे ॥
होय तिरन असमर्थ, महाजोधा बल पूरे।
तिस रनमें जिन तोय, भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जन अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक।
तुम पदपंकज मन वसैं ते नर सदा निशंक ४
नक्र चक्र मगरादि, मच्छकरि भय उपजावै।
जामें वडवा अग्नि, दाहतैं नीर जलावै ॥
पार न पावै जास, थाह नहिं लहिये जाकी
गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी।
सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं।
लोल कलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं४
महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहे हैं ॥
सोचत रहैं उदास, नाहिं जीवनकी आशा।
अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा ॥
तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निजअंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होंय अनंग ४
पांव कंठतैं जकर, बांध सांकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैरमांहिं, जिन जांघ विदारी ॥

भूख प्यास चिंता शरीर, दुःख जे विललाने ।
सरन नाहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने ॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं ।
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं४६
महामत्त गजराज, और मृगराल, दवानल ।
फनपति रन परचंड, नीरनिधि रोग महाबल ॥
बंधन ये भय आठ, डरपकर मानों नाशै ।
तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै॥
इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय ।
यातैं तुम पद भक्तको, भक्ति सहाई होय ॥४७॥
यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी॥
विविध वर्णमय पुहुप, गूंथ मैं भक्ति विथारी ।
जे नर पहरैं कंठ, भावना मनमें भावैं ।
मानतुंग ते निजाधीन, शिवलछमी पावैं ॥
भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हितहेत ।
जे नर पढ़ैं सुभावसौं, ते पावैं शिवखेत ॥४८॥

इति हेमराजकृत भक्तामर स्तोत्र समाप्त ॥ २४ ॥

(२५)

अथ कल्याणमंदिर स्तोत्र

दोहा।

परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन।
बंदू परमानंद मय, घट घट अंतर लीन ॥१॥

चौपाई।

निर्भय करन परम परधान। भवसमुद्रजल तारन जान ॥ शिवमंदिर अघहरण अनिंद। बंदू पास चरण–अरबिंद ॥ २ ॥ कमठमानभंजन वरवीर। गरिमा सागर गुणगंभीर ॥ सुरगुरु पार लहैं नहिं जास। मैं अजान लंपूं जस तास ॥ ३ ॥ प्रभुस्वरूप आति अगम अथाह। क्यों हमसे यह होय निवाह ॥ ज्यों दिनअंध-उल्लूको पोत। कहि न सके रविकिरण उद्योत४ मोहहीन जानै मनमाहिं। तोहु न तुम गुण वरने जाहिं ॥ प्रलयपयोधि करै जलबोन। प्रगटहिं रतन गिनै तिहिं कौन ॥५॥ तुम असंख निर्मल गुण खानि। मैं माति हीन कहूं निजबानि ॥ ज्यों बालक निज बांहि पसार। सागर परमित

कहै विचार॥ ६॥ जे योगींद्र करहिं तप खेद। तऊ न जानहिं तुम गुण भेद॥ भक्ति भाव मुझ मन अभिलाप। ज्यों पंछी बोले निज भाप ॥७॥ तुम जस महिमा अगम अपार। नाम एक त्रि-भुवन आधार॥ आवै पवन पद्मसर होय। ग्रीषम तपत निवारै सोय ॥८॥ तुम आवत भविजन मनमाहिं। कर्मनिबंध शिथल है जाहिं॥ ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर। डरहिं भुजंग लगे चहुं-ओर ॥ ९ ॥ तुम निरखत जन दीन दयाल। संकटतैं छूटै ततकाल॥ ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर। ते तज भागहिं देखत भोर ॥ १० ॥ तू भविजन तारक किम होहि। ते चित धार तिरहिं ले तोहि॥ यह ऐसे कर जान स्वभाव। तिरहिं मसक ज्यों गर्भित वाव॥ ११॥ जिहं सब देव किये वश वाम। ते छिनमें जीत्यो सो काम॥ ज्यों जल करै अगनि कुल हान। वडवानल पीवै सो पान। १२। तुम अनंत गरवा गुण लिये। क्योंकर भक्ति धरों निज हिये॥ है लघुरूप तिरहिं संसार। यह प्रभु महिमा अकथ अपार॥

॥ १३ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत । कर्म सुभट जीते किहिं भांति ॥ यह पटतर देखउ संसार । नील विरछ ज्यों दहै तुसार॥१४॥मुनिजन हिये कमल निज टोंहि। सिद्धरूपसम ध्यावैं तोहि॥ कमल कराणिका विन नहिं और । कमल वीज उपजनकौ ठौर१५जव तुव ध्यान धरै मुनि कोय। तव विदेह परमातम होय ॥ जैसे धातुशिला तनु त्याग । कनक स्वरूप धवै जव आग ।१६। जाके मन तुम करहु निवास । विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत विच आवै कोय । विग्रह मूल निवारै सोय । १७ । करहिं विवुध जे आतम ध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥ जैसे नीर सुधा अनुमान । पीवत विष विकारकी हानि ॥ १८ ॥ तुम भगवंत विमल गुण लीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों पीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥ १९ ॥

दोहा ।

निकटरहत उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक॥
ज्योंरवि ऊगत जीव सव, प्रगट होत भुविलोक।

सुमन वृष्टि जो सुर करहिं, हेठ बीठ मुख सोह ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधोमुख होइ ॥
उपजी तुम हिय उदधितैं, वानी सुधा समान ।
जिहं पीवत भवि जन लहे, अजर अमर पदथान॥
कहहिं सार तिहुं लोकको, यह सुरचामर दोय ।
भाव सहित जो जिन नमें, तस गति ऊरध होय॥
सिंघासन गिरमेरु सम, प्रभुधुनि गरजत घोर ।
श्यामसुतनुघनरूपलखि, नाचतभविजन मोर॥
छवि हत होत अशोक दल, तुम भामडंल देख ।
वीतरागके निकट रह, रहत न राग विशेख ॥
सीख कहैं तिहुं लोकको, यह सुरदुंदुभिनाद ।
शिवपथसारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छविदेत ॥
त्रिविधरूप धर मनहु शशि, सेवत नखतसमेत ॥

पद्धरि छंद ।

प्रभुतुम शरीर दुतिरतन जेम । परताप पुंज जिमि शुद्ध हेम ॥ अति धवलसुजश रूपासमान । तिनकेगढतीनविरजमान ॥ २७ ॥ सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल, तिन सीसमुकुट तज देहिं माल ।

तुम चरण लगत लहलहै प्रीति, नहिं रमहिं और जनसुमन रीति ॥ २८ ॥ प्रभुभोगविमुख तनकर्मदाह, जनपारकरत भवजलनिवाह॥ ज्यों माटी कलश सुपक्व होय, ले भार अधोमुख तिरहि तोय॥२९॥तुम महाराज निर्धन निरास। तज विभव विभव सब जग प्रकाश ॥ अक्षर-स्वभाव सुलिखे न कोय, महिमा अनंत भगवंत सोय ॥३१॥ कोप्यो सुकमठ निज वैर देख, तिनकरी धूल वरषा विशेख॥ प्रभुतुम छाया नहिं भई हीन, सो भयो पापि लंपट मलीन ॥ ३२ ।

गरजंत घोर घन अंधकार, चमकंत बिज्जु जल मुशलधार ॥ वरषंत कमठ धर ध्यान् रुद्र, दुस्तर करता निजभवसमुद्र ॥ ३३ ॥

(वस्तुछंद)

मेघमाली मेघमाली आप बलफोरि, भेजे तुरत पिशाच गण, नाथपास उपसग्ग कारण। अग्नि जाल झलकंत मुख, धुनि करत जिमि मत्तवारण ॥ कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिह

कंठ । ह्वै निशंक वह रंक निज, करै कर्म दिढ़ गंठ ॥ ३४ ॥

चौपाई ।

जे तुमचरण कमल तिहुंकाल । सेवहिं तजमाया जंजाल ॥ भावभगति मन हरष अपार । धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥ भवसागरमहं फिरत अजान । मैं तुम सुयश सुन्यो नहिं कान । जो प्रभुनाममंत्र मन धरै । तासौं विपतिभुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिनपदमाहिं । मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥ मायामगन फिरयो अज्ञान । करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥ ३७ ॥ मोहतिमिर छायो दृग मोहि । जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ॥ तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं । मरम छेदके कुवचन कहैं । ३८ । सुन्यो कान यश पूजे पाय । नैनन देख्यो रूप अघाय ॥ भक्ति हेतु न भयो चित चाव । दुखदायक किरिया विनभाव ॥३९॥ महाराज सरनागत पाल । पतित उधारण दीनदयाल ॥ सुमिरण करहुं नाय निज शीश । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥

कर्मनिकंदन—महिमासारं । अशरणशरण सुय-
शविस्तार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पांय । तो मुझ
जन्म अकारथ जाय ॥४१॥ सुरगणवंदित दया
निधान । जगतारण जगपति जगजान ॥ दुख
सागरतैं मोहि निकासि । निर्भयथान देहु सुख-
रासि ॥४२॥ मैं तुम चरण कमल गुणगाय । बहु
विधि भक्तिकरी मनलाय ॥ जनम जनम प्रभु
पाऊं तोहि । यह सेवा फलदीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकांत वेसरीछंद छप्पय ।

इहिविधि श्रीभगवंत, सुयश जे भावि जन भा-
षहिं । ते निज पुण्य भंडार, सांचि चिर पाप प्र-
णासहिं ॥ रोम रोम हुलसंति, अंग प्रभु गुण
मन ध्यावहिं । स्वर्गसंपदा भुंज, वेग पंचम गति
पावहिं ॥ यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्रकी
बुद्धि । भाषा कहत बनारसी, कारण समकित
शुद्धि ॥ ४४ ॥

इति कल्याणमंदिर समाप्त ॥ २५



(२६)

अथ भूधरकृत एकीभाव स्तोत्र।

दोहा।

वादिराज मुनिराजके, चरण कमल चितलाय।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपरसुखदाय ॥ १ ॥

(छंद)

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी।
सो मुझ कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी॥
ताहि तिहारी भक्ति जगत रवि ज्यों निरवारे।
तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारे।१।
तुम जिन ज्योतिस्वरूप दुरितअंधियार निवारी।
सो गणेश गुरु कहे तत्त्वविद्याधनधारी॥
मेरे चितघरमाहिं वसो तेजोमय यावत।
पापतिमिर आकाश तहां सो क्योंकर पावत॥२॥
आनँद आंसू वदन धोय तुमसौं चित साने।
गदगदसुरसौं सुयशमंत्र पढ पूजा ठाने॥
ताके बहुविधि व्याधिव्याल चिरकाल निवासी।
भाजैं थानक छोड देहवांबइके वासी॥ ३॥
दिवितैं आवनहार भये भवि-भाग-उदयवल।

पहलेही सुर आय कनकमय कीय महीतल ॥
मनगृहध्यानदुवार आय निवसो जगनामी ।
जो सुवरण तनकरो कौन यह अचरज स्वामी ।४।
प्रभु सब जगके विना हेतु बांधव उपकारी ।
निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी ।
भक्तिरचित ममचित्तसेज नित वास करोगे ।
मेरे दुखसंताप देख किमि धीर धरोगे ॥ ५ ॥
भववनमैं चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई ।
तुम थुतिकथापियूष-वापिका भागन पाई ॥
शशि तुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम ।
करत न्होन ता मांहि क्यों न भवताप बुझै मम ॥
श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग ।
कमल कनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥
मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै । अब सो
कौन कल्यान जो न दिनदिन ढिग आवै ॥ ७ ॥
भव तज सुखपद बसे काममद सुभट संहारे ।
जो तुम को निरखंत सदा प्रिय सदा तिहारे ॥
तुम वचनामृतपान भक्ति अंजुलिसों पीवैं ।
तिनै भयानक क्रूर रोग रिपु कैसे छीवैं ॥ ८ ॥

मानथंभ पाषाण आन पाषाण पटंतर ॥
ऐसे और अनेक रत्न दीखैं जग अंतर ।
देखत दृष्टि प्रमाण मानमद तुरत मिटावै। जो तुम
निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै ॥ ९ ॥
प्रभुतन पर्वत परत पवन उरमैं निवहै है ।
तासौं ततछिन सकल रोग रजबाहिर ह्वै है ।
जाके ध्यानाहूत वसो उरअंबुज माहीं ॥
कौन जगतउपकार करण समरथ सो नाहीं ॥१०॥
जनमजनमके दुःख सहे सब ते तुम जानो ।
याद किये मुझ हिये लगैं आयुधसे मानो ॥
तुम दयाल जगपाल स्वामि मैं सरण गही है ।
जो कछु करनो होय करो परमाण वही है ॥११॥
मरण समय तुम नाम, मंत्र जीवकतैं पायो ।
पापाचारी स्वान प्रान तज अमर कहायो ॥
जो मणिमाला लेय, जपै तुम नाम निरंतर ।
इंद्र संपदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥ १२ ॥
जो नर निर्मल ज्ञान, मान शुचि चारित साधै।
अनवधि सुखकी सार भक्ति कूंची नहिं लाधै ॥
सो शिव वांछक पुरुष मोक्षपट केम उघारै ।

मोह मुहर दिढ करी, मोक्षमंदिरके द्वारै ॥१३॥
शिवपुरकेरो पंथ, पाप तमसौं अति छायो।
दुखसरूप बहुकूप खाडसौ विकट बतायो॥
स्वामी सुखसौं तहां कौन जन मारग लागैं।
प्रभुप्रवचनमणिदीप जौनके आगैं आगैं ॥१४॥
कर्मपटलभूमाहिं दबी आतमनिधि भारी।
देखतअतिसुखहोय विमुखजन नांहिं उघारी॥
तुम सेवक ततकाल ताहि निश्चय करधारै।
थुतिकुदालसौं खोद बंदभू कठिन विदारै।१५॥
स्यादबाद गिरिउपज मोक्ष सागरलौं धाई।
तुमचरणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई॥
मो चित्त निर्मल थयो न्होन रुचिपूरव तामैं।
अब वह हो न मलीन कौन जिन संशय यामैं १६
तुम शिव सुखमय प्रगटकरत प्रभु चिंतन तेरो।
मैं भगवान समान भाव यों वरतै मेरो॥
यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै। तुम
प्रसाद सकलंक जीव वांछितफल पावै॥ १७॥
वचन जलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै।
भंगतरंगिनि विकथवादमलमालिन उथापै॥

मन सुमेरसौं मथैं ताहि जे सम्यकज्ञानी ।
परमामृतसौं तृपत होहिं ते चिरलौं प्रानी ॥१८॥
जो कुदेव छविहीन वसनभूषण अभिलाखैं ।
वैरीसौं भयभीत होय सो आयुध राखैं ॥
तुम सुंदर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई ।
भूषणवसनगदादि ग्रहण काहेको होई ॥ १९ ॥
सुरपति सेवा करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी । सो
शलाघना लहै मिटै जगसौं जग फेरी ॥ तुम भव
जलधिजिहाज तोहि शिवकंत उचारिये । तुही
जगत जनपाल नाथ थुतिकी थुति करिये ॥ २०॥
वचनजाल जडरूप आप चिन्मूरति झांई ।
तातैं थुति आलाप नाहिं पहुंचैं तुम तांई ॥
तोभी निष्फल नाहिं भक्तिरसभीने वायक । संत-
नको सुरतरुसमान वांछितवरदायक ॥ २१ ॥
कोप कभी नहिं करो प्रीति कब हूं नहिं धारो ।
अति उदास वेचाह चित्त जिनराज तिहारो ॥
तदपि आन जग वहै वैर तुम निकट न लहिये ।
यह प्रभुता जगतिलक कहां तुम विन सरदहिये
॥ २२ ॥ सुरतिय गावैं सुजश सर्वगति ज्ञानस्व-

रूपी। जो तुमको थिर होहि नमै भवि आनंदरूपी
ताहि छेमपुर चलन बाट बांकी नहि होहै।
श्रुतके सुमरनमांहि सो न कबहूं नर मोहै ॥ २३ ॥
अतुल चतुष्टय रूप तुमैं जो चितमें धारै। आ-
दरसों तिहुंकालमांहि जग श्रुति विस्तारै ॥
सो सुकृत शिवपंथ भक्तिरचना कर पूरै। पंच
कल्यानक ऋद्धि पाय निश्चै दुख चूरै ॥ २४ ॥
अहो जगतपति पूज्य अवधिज्ञानी मुनि हारे।
तुम गुणकीर्तनमाहिं कौन हम मंद विचारे ॥
श्रुतिछलसों तुमविषै देव आदर विस्तारे।
शिवसुख पूरणहार कल्पतरु यही हमारे ॥ २५ ॥
वादिराज मुनिराज शब्दविद्याके स्वामी।
वादिराज मुनिराज तर्कविद्यापति नामी ॥
वादिराज मुनिराज काव्यकरता अधिकारी।
वादिराज मुनिराज बडे भविजनउपकारी ॥ २६ ॥

दोहा।

मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषासूत्रमझार।
भक्तिमाल भूधर करी, धरो कंठ सुखकार ॥ १ ॥

इति भूधरकृत एकीभावस्तोत्र ॥ २६ ॥

अथ पांडे हीरानंदकृत एकीभाव स्तोत्र ।

दोहा ।

वादिराज मुनिराजके, कह्यौ सुहित उदगार ।
स्वपररूप अनुभव कथा, कहत स्वपरहितकार ॥

चौपाई ।

एकीभाव भयो मुझ माहिं । करमप्रबंध आदि कहुं नाहिं ॥ सो भवभवगत अति दुख करे । दुर्निवार वार्यौ नहिं परै ॥ १ ॥ ताकौं अर दुखकौं जिनसूर । दूर करै तुझ भगति वचूर ॥ तौ अब कौन तापकारि भूरि । जो न भगति दुख कर है दूर ॥ २ ॥ जोतीरूप पापतम नास । तू जिनरवि चिर मुनिवर भास ॥ मेरे चितमंदिरमैं आय । प्रगट विभासमान सुखदाय ॥ ३ ॥ तौ कहु ता हृदि कैसे बनै । पाप अंधार वसतु जो भनै ॥ नाशै इह निहचै परमान । आप आप पर पर पद आन ॥ ४ ॥ आनंद आंसु धोय मुख नैन । जो गदगद भाषै जिनबैन ॥ स्तोत्र मंत्र करि दृढता धरै । श्रीजिनराज रूप अनुसरै ॥ ५ ॥ ताके भ्यास करत चिरकाल । देहरूप बांवईके

व्याल॥ व्याधिरूप जे वसहिं अनादि। ते भजि जांहि न उपजै सादि॥६॥ सुरग लोकतैं षण-मासाव। पहलहिं भूमि होत बरसाव॥ अथवा सकल कनकमय होय। जिन आगमन कहै सब कोय॥७॥ मेरे हृदय कमल प्रासाद। रुचि-कर ध्यानद्वार आल्हाद॥ वसत देव तुह कौन कहाव। जो सोवन वपु होय लखाय॥८॥ सकल लोकका तू भगवान। विना प्रयोजन बंधु सुजा-न॥ सकल पदारथ भासकभास। तुझमें वसै अबाध विलास॥९॥ भगतिरचित सज्या मो हृदय। तामैं तू अधिवासी सदय॥ तौ तहँ कहां कलेस करूर। वसतु सहारि सकै जिनसूर॥१० जनम मरन अटवी संसार। भ्रमत भ्रमत गत काल अपार॥ तामैं तुव नयकथा सरूप। अ-मृतवापिका लसै अनूप॥११॥ भगतिभावसीत-लजलभरी। स्यादवाद निरमलता करी॥ तामैं मगनभयोहूं आय। क्योंमुझदुखदावा न मिटाय॥ प्रभु तुव पावन उदयविहार। पदकमलनितरि कमल समार॥ तातैं हेमकमल आवास। लसैं

सुरभि तरुकमलावास ॥ १३ ॥ मैं प्रभु सरव अं-
गकरि धरयो । प्रभु फुनि सकल अब अवतरयो ॥
तो कहूं कौन श्रेय मुझ रह्यो । जो दिन दिन
होइ न लहलह्यो ॥१४॥ दुरनिवारमदमदनानि-
कंद । त्रिभुवनपातिवंदित सुखकंद ॥ जो तुव
दर्शनधारी जीव । तुव वचनामृत धरै सदीव ॥१५॥
अरु फुनि करम कुवनमैं रहै । परम अनंद धाम
संग्रहै ॥ ताकैं क्रूराकार उपाधि । कंटकरूप कहां
है व्याधि ॥ १६ ॥ पाषाणातम इतर समान ।
मानस्तंभ रतनपरधान ॥ पुद्गलपुंजदृष्टि जो परै
मानरोग मानी परिहरै ॥१७॥ तो यह मानथं-
भको हेतु । प्रभुसमीपता परगट देतु ॥ यातैं हम
अवधारी जानि । परमातम पद सब सुखखानि
॥१८॥ जिनतनुशैल परासि जो वाउ । वहै सकल
जन सुख उपजाउ । यदपि हियेमहिं पैठि न वहै ।
तदपि रुजारज रंच न रहै ॥ १९ ॥ जाके हिये-
कमल जिनदेव । ध्यानाहूत विराजित एव ॥
ताकै कौन रहा उपगार । जिन आतमनिधि
पाई सार ॥ २० ॥ तुम जानत हो दीनदयाल ।

जो मुझ भवभव दुख विकराल ॥ जब जब वह दुख हूं चितिकरौं । तब तब शस्त्रघात अनुसरौं ॥ २१ ॥ तू सरवस सरूप जिनराज। तेरोसरन गह्यौ हम आज॥ अब जो जो कछु करणा होइ। सो प्रमाण करिये अब लोइ ॥ २२॥ जीवकसेठि पढे नवकार । मरन समय कूकर अवधार। पापाचारी तिरजग जौनि । देवलोक सुख पायौ तौनि ॥ २३ ॥ जो मानुषमनि निरमल जाप । नुतिपद जपै विगत भवताप ॥ देवराज श्रीप्रभुता लहै । तो संदेह कवन निरवहै ॥२४॥ सुधाज्ञान सुविचारित दोय । अरु जो श्रीजिन भगति न होय ॥ जो अनवाधि सुख प्रगटनहार । मुकतिद्वारकी कुंजीसार ॥२५॥ तौ कहु कैसैं मुकति कपाट। मोह मुहरि खुलि पावै वाट यातैं सब जन मुक्त्याभिलाषि । श्रीजिनभक्ति करौ जिन साखि ॥ २६ ॥ अघमय अंधकार करि भरी । मुकतिपंथभू विषमा खरी ॥ गरते लसैं कलेस अगाध । चालि करि सकै महामुनि

१—गरते—पर्वत निर्झरनेके पानीसे एकत्र हुये ताकाव कुंड आदिक ।

साध ॥ २७ ॥ तो मारग सुख चलि हैं कौन । जिनवानी करदीपक जौन ॥ तिनके सकल मनोरथ फलैं । स्यादवाद मारग जो चलैं ॥२८॥ अथ अनवाधि निधि आतम जोति । द्रष्टा कहुं अनमिति सुख होति ॥ करम पहल भूमहिं दावि रही । मिथ्यादृष्टि न कबहूं लही ॥२९॥ जे तुव भगतिवंत परवीन । तिन वह निधि खिनकर करि लीन ॥ स्तोत्र कुदाल भूमिका खोदि । बंध पुरुष कठिनाई नोदि ॥३०॥ नय हिमागिरतैं उपजि सुभाय । मोख सुधानिधि पहुंची जाय ॥ भगति नाम गंगा सुरसरी । श्रीजिन चरण कमल अनुचरी ॥ ३१ ॥ तामैं मैं चेतन रुचिवंत । न्हायधोय कीनो अघअंत ॥ तो कहु कलमष मुझ कहँ रहा । जो संसै भासै दुखदहा ॥ ३२॥ प्रगट भये थिरपदसुभ सार । श्रीजिनवर पद अगम अपार ॥ जब तुव ध्यानधरै मनलाय । तब हूं तुम इति दुविधा जाय ॥३३॥ मिथ्यारूप यदपि इहु भाव । तौहू त्रिपति आविचल उपजाव ॥ दोषातम वांछित फल लहै । तुम प्रसादतैं मुनि

जन कहै ॥३४॥ श्रीजिनवानी उदधि अगाध। सप्तभंगलहरी विनबाध ॥ मिथ्यावाद मैल अपहरै। तीनिभवनमें जो विस्तरै ॥ ३५ ॥ वानी उदधि सुविधि अवगाह। करै विबुध मन अचल निवाह ॥ बहुत सेवकरि पावै सोइ। अमृत सुधा पुनि जनम न होइ ॥ ३६ ॥ जो सुभाव ताहि है अमनोगि। सो मनोगिता चाहै जोगि॥ जो वैरी करि संकित रहै। सो नित शस्त्रपाणि संग्रहै ॥ ३७ ॥ तू निज सहज सुभग सरवंग। सकल वैरि विसरै तुव संग ॥ तातैं भूषण वसन बणाव। शस्त्र ग्रहण क्यों उपजै चाव ॥ ३८ ॥ इंद्र सेव तुव करै सुभाय। न कछु बडाई तुव अधिकाय ॥ ताहीकी प्रभुता अति बढी। एकी भवतारी गुनमढी ॥ ३९ ॥ तू तारक भवजलनिधि नीर। सिद्धिविलासिनिपति वरवीर ॥ सकललोकप्रभु तू भगवान। इह विधि तुव थुति अनुभव मान ॥ ४० ॥ वचनवरगना पुदगलरूप। तू चेतन आतमा अनूप ॥ यातैं हमकृत थुति उदगार। क्यों करि तुम महि व्यापन-

हार ॥ ४१ ॥ पै तथापि तुम वचनविलास । भगतिसुधापूरन प्रतिभास ॥ भव्य जीवकौं वांछित फलै । क्रम क्रम पापपुंजमल गलै ।४२। नहिं जिन तुव कहुं कोप कलेस । नहि प्रसन्नताको परवेस ॥ अरु तुव चित अतिपरम उदास । निरपेछक सब जगतविकास ॥ ४३ ॥ तदपि भवन सब आज्ञाधीन । तुम समीपता वैरविहीन ॥ भुवनातिलक यह प्रभुतामाल । तुव विन और न कहूं त्रिकाल ॥ ४४ ॥ देव त्रिदशगणिका मंडली । गावत तुव कीरति मनरली ॥ सकल चराचर ज्ञायक ज्ञान । इहु प्रभुथुति जो करै प्रमान ॥ ४५ ॥ ताकौं खेमपंथके जात । को मारग नवि करि है घात ॥ अरु वह तत्त्वगरंथिनिविखै । मोह गहलता रंच न दिखै ॥४६॥ निरवधि सुखदृगवीरजबोध । इहु परमातमपद अवबोध ॥ समय समय जो जिन अनुभवै । परमादर मनवचकरि नवै ।४७। सो सुकृत सिव मारग और । तितनेकरि पुरवै सुख ठौर । पंचकल्यानक रचना मांडि । शुद्ध होय

है अच्युत जो भक्त नमैं तुम चरनकमलकौं ।
छिनक एकमैं आप देत मनवांछित फलकौं ॥६॥
तुमसौं सन्मुख रहै भक्तिसौं सो सुख पावै ।
जो सुभावतैं विमुख आपतैं दुखहि बढावै ॥
सदा नाथ अवदात एकद्युतिरूप गुसांई ।
इन दोंन्योंके हेत स्वच्छ दरपणवत सांई ॥ ७ ॥
है अगाध जलनिधी समद्जल है जितनो ही ।
मेरू तुंगसुभाव सिखरलौं उच्च भन्यो ही ॥
वसुधा अर सुरलोक एहु इसभांति सई है ।
तेरी प्रभुता देव भुवनिकूं लंघि गई है ॥ ८ ॥
है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारैं ।
कह्यो न आवागमन प्रभू मतमांहि तिहारैं ॥
दृष्ट पदारथ छांडि आप इच्छति अदृष्टकौं ।
विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सुदृष्टकौं ॥९॥
कामदेवकूं किया भस्म जगत्राता थें ही ।
लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही ॥
सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हारो ।
तुमकौं काम न ग्रहे आप घट सदा उजारो ॥१०॥
आपवान वा पुन्यवान सो देव बतावे ।

तिनके औगुन कहें नाहि तू गुणी कहावै ॥
निज सुभावतैं अंबुराशि निज महिमा पावै ।
स्तोक सरोवर कहैं कहा उपमा बढिजावै ॥११॥
कर्मनकी थिति जंतु अनेक करै दुखकारी ।
सो थिति बहु परकार करै जीवनकी ख्वारी ॥
भवसमुद्रके मांहि देव दोन्योंके साखी ।
नाविक नाव समान आप वाणीमें भाखी ॥१२॥
सुखकौं तो दुख कहै गुणनकूं दोष विचारै ।
धर्म करनके हेत पाप हिरदै विच धारै ॥
तेल निकासन काज धूलिकौं पेलै घानी ।
तेरे मतसौं बाह्य इसे जे जीव अज्ञानी ॥ १३ ॥
विष मोचै ततकाल रोगकौं हरै ततच्छन ।
मणि औषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन ॥
ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यौं मन धरि हैं ।
भ्रमत अपरजन वृथा नही तुम सुमिरन करि हैं ॥
किंचित भी चितमाहिं आप कछु करो न स्वामी ।
जे राखैं चितमाहिं आपको शुभपरिणामी ॥
हस्तामलवत लखैं जगतकी परिणति जेती ।

१ ऐसे । २ रसायन ।

तेरे चितके बाह्य तोउ जीवैं सुखसेती ॥ १५ ॥
तीनलोक तिरकालमाहिं तुम जानत सारी।
स्वामी इनकी संख्या थी तितनीहि निहारी
जो लोकादिक हुते अनंते साहिब मेरा।
तेऽपि झलकते आनि ज्ञानका ओर न तेरा॥१६
है अगम्य तव रूप करै सुरपति प्रभु सेवा।
ना कछु तुम उपकार हेत देवनके देवा॥
भक्ति तिहारी नाथ इंद्रके तोषित मनको।
ज्यौं रवि सन्मुख छत्र करै छाया निज तनको१७
वीतरागता कहां कहां उपदेश सुखाकर।
सो इच्छाप्रतिकूल वचन किम होय जिनेसर॥
प्रतिकूली भी वचन जगतकूं प्यारे अतिही।
हम कछु जानी नाहि तिहारी सत्यासतिही १८
उच्चप्रकृति तुम नाथ संग किंचित न धरनतैं॥
जो प्रापति तुम थकी, नाहि सो धनेसुरनतैं॥
उच्चप्रकृति जल विना भूमिधर धुनी प्रकासै।
जलधि नीरतैं भरयो नदी ना एक निकासै १९
तीन लोकके जीव करो जिनवरकी सेवा।

१ पहाड। २ नदी।

नियमथकी करदंड धर्यो देवनके देवा ॥
प्रातिहार्य तौ बनै इंद्रके बनैं न तेरे ।
अथवा तेरे बनैं तिहारै निमित परेरे ॥ २० ॥
तेरे सेवक नाहि इसे जे पुरुष हीनघन ।
धनवानोंकी ओर लखत वे नाहि लखत पन ॥
जैसैं तमथिति किये लखत परकास थितीकूं ।
याकूं सूझत नाहिं तमथिती मंदमतीकूं ॥ २ ॥
निजवृध सासोसास प्रगट लोचन टमकारा ।
तिनकौं वेदत नाहिं लोकजन मूढ विचारा ॥
सकल ज्ञेय ज्ञायक अमूर्तीज्ञान सुलच्छन ।
सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन ॥
नाभिरायके पुत्र पिता प्रभु भरततने हैं ।
कुल प्रकाशिकैं नाथ तिहारो तवन भने हैं ॥
ते लघुधी असमान गुननकौं नाहिं भजे हैं ।
सुवरन आयो हाथि जानि पाषान तजे हैं ॥ २३ ॥
सुरासुरनको जीति मोहने ढोल बजाया ।
तीन लोकमें किये सकल वशि यों गरभाया ॥
तुम अनंतबलवंत नाहिं ढिग आव न पाया ।
करि विरोध तुमथकी मूलतैं नाश कराया ॥ २४ ॥

एक मुक्तिका मार्ग देव तुमने परकास्या ।
गहन चतुरगतिमार्ग अन्य देवनकूं भास्या ।
'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिके ।
भुज न विलोको नाथ कदाचित गर्भ जु धरिके ॥
केतुविपक्षी अर्कतनो फुनि अग्नितनो जल ।
अंभुनिधीअरि प्रलयकालको पवन महाबल ॥
जगत माहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति ।
तेरो उदये है विपक्षतैं रहित जगतपति ॥२६॥
जाने विन हू नमत आपको जो फल पावै ।
नमत अन्यको देव जानि सो हाथ न आवै ॥
हरी मणीकूं काच काचकूं मणी रटत है ॥
ताकी बुधिमें भूल, मूल्य मणिको न घटत है ॥
जे विवहारी जीव वचनमें कुशल सयानैं ।
ते कषायकरि दग्ध नरनकौं देव बखानैं ॥ ॥
ज्यों दीपक बुझि जाय ताय कहि 'नंदि' भयो है।
भग्न घडेको कहैं कलस ए मँगलि गयो है॥ २१॥
स्यादवाद संजुक्त अर्थको प्रगट बखानत ।
हितकारी तुम वचन श्रवनकरि को नहि जानत ॥

१ कंधोंको ।

दोपरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जगगुर ।
जो ज्वरसेती मुक्त भयो सो कहत सरलसुर२९
विनवांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित ।
है नियोग ए कोय जगतको करत सहजहित ॥
करै न वांछा इसी चंद्रमा पूरो जलनिधि ।
सीतरश्मिकूं पाय उदधि जल बढै स्वयंसिधि३०
तेरे गुणगंभीर परम पावन जगमाहीं ।
बहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाईं ॥
तिन गुणानको अंत एक याही विधि दीसै ।
ते गुण तुझ ही माहिं औरमें नाहिं जगीसै॥३१॥
केवल थुति ही नाहि भक्तिपूर्वक हम ध्यावत ।
सुमरन प्रणमन तथा भजनकरि तुम गुण गावत
चितवन पूजन ध्यान नमनकरि नित आराधैं ।
को उपावकरि देव सिद्ध फलको हम साधैं ॥३२॥
त्रैलोकी नगराधिदेव नित ज्ञानप्रकाशी ।
परमज्योति परमातमशक्ति अनंती भासी ॥
पुन्यपापतैं रहित पुन्यके कारण स्वामी ।
नमौं नमों जगवंद्य अवंचक नाथ अकामी ॥३३॥
रस सपरस अर गंध रूप नाहिं शब्द तिहारे ।

इनिके विषय विचित्र भेद सब जाननहारे ॥
सब जीवनप्रतिपाल अन्यकरि हैं अगम्य गन ।
सुमरनगोचर नाहिं करौं जिन तेरो सुमिरन ३४
तुम अगाध जिनदेव ।चित्तके गोचर नाहीं ।
निःकिंचन भी प्रभू धनेसुर जाचत साईं ॥
भये विश्वके पार दृष्टिसों पार न पावे ।
जिनपति एम निहारि संतजन सरने आवे॥३५॥
नमों नमों जिनदेव जगतगुरु शिक्षादायक ।
निजगुणसेती भई उन्नती महिमालायक ॥
पाहनखंड पहार पछैं ज्यों होत और गिर ।
त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर ॥३६॥
स्वयं प्रकाशी देव रैन दिनकूं नहिं वाधित ।
दिवस रात्रि भी छतैं आपकी प्रभा प्रकासित ॥
लाघव गौरव नाहि एकसो रूप तिहारो ।
कालकलातैं रहित प्रभूसूं नमन हमारो ॥ ३७ ॥
इहविधि बहु परकार देव तव भक्ति करी हम ।
जाचूं वर न कदाचि दीनै है रागरहित तुम ॥
छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे ह्वै है ।
फिर छायाकौं जाचत यामैं प्रापति कै है ॥ ३८ ॥

जो कुछ इच्छा होय देनकी तौ उपगारी ।
द्यो बुधि ऐसी करूं प्रीतिसौं भक्ति तिहारी ॥
करो कृपा जिनदेव हमारे परि ह्वै तोषित ।
सनमुख अपनो जानि कौन पंडित नहिं पोषित ॥
यथाकथंचित भक्ति रचै विनईजनके ही ।
तिनकूं श्रीजिनदेव मनोवांछित फल दे ही ॥
पुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावें ।
सो सुख जस धनं-जय, प्राप्त ह्वै शिवपद पावें ४०
श्रावक माणिकचंद सुबुद्धी अर्थ बताया ।
सो कवि 'शांतीदास' सुगमकरि छंद बनाया ॥
फिरिफिरिके ऋषि 'रूपचंद' ने करी प्रेरणा ।
भाषा स्तोतर विषापहारकी पढो भविजना ॥४१॥

इति श्रीविषापहार स्तोत्र समाप्त ॥ २८ ॥

---

(२९)

अथ भूधरकृत भूपालचौवीसी स्तोत्र ।

दोहा ।

सकल सुरासुर पूज नित, सकल सिद्धि-दातार ।
जिनपद वंदूं जोरकर, अशरन जनआधार ।१।

चौपाई ।

श्रीसुखवास महीकुल धाम । कीरतिहर्षणथल अभिराम ॥ सुरसुतिके रतिमहल महान । जय युवतीको खेलन थान ॥ अरुण वरण वांछित वरदाय । जगत पूज्य ऐसे जिनपाय ॥ दर्शन प्रात करै जो कोय । सब शिवथानक सो जन होय ॥ १ ॥ निर्विकार तुम सोम शरीर । श्रवण सुखद वाणी गंभीर ॥ तुम आचरण जगतमें सार । सवजीवनको है हितकार ॥ महानिंद भव-मारू देश । तहां तुंगतरु तुम परमेश ॥ सघन छांह मंडित छविदेत । तुव पंडित सेवैं सुखहेत ॥ २ ॥ गर्भकूपतैं निकस्यो आज । अब लोचन उघरे जिनराज ॥ मेरो जन्म सफल भयो अबै । शिवकारण तुम देखे जबै ॥ जगजननैन कमल-वनखंड । विकसावन शशिशोक विहंड ॥ आनं-दकरण प्रभा तुमतणी । सोई अमीझरण चांद-णी ॥ ३ ॥ सब सुरेंद्रशेखर शुभरैन । तुम आ-सनतट माणक ऐन ॥ दोऊं दुति मिल झलकैं जोर । मानो दीपमाल दुहुं ओर ॥ यह संपति

अरु यह अनचाह। कहां सर्वज्ञानी शिवनाह ॥ तातैं प्रभुता है जगमाहिं। सही असम है संशय नाहिं ॥४॥ सुरपति आन अखंडित वहै। तृण ज्यौं राज तज्यो तुम वहै ॥ जिन छिनमें जग महिमा दली। जीत्यो मोहशत्रु वहुवली ॥ लोकालोक अनंत अशेख। कीनो अंत ज्ञानसों देख प्रभु प्रभाव यह अद्भुत सवै। अवर देवमें मूल न फवै ॥ ५॥ पात्रदानातिन दिन दिन दियो। तिन चिरकाल महातप कियो ॥ वहुविधि पूजा कारक वही। सर्वशील उन पाले सही॥ और अनेक अमल गुणरास। प्रापति आयभये सब तास ॥ जिन तुम शरधासों कर टेक। हग वल्लभ देखे छिन एक ॥ ६ ॥ त्रिजगतिलक तुम गुणगण जेह। भव भुजंग विषहरमणि तेह ॥ जो उर कानन माहिं सदीव। भूषण कर पहरै भवि जीव ॥ सोई महामती संसार। सो श्रुतसागर पहुंचै पार ॥ सकल लोकमें शोभा लहै। महिमा योग जगतमें वहै ॥ ७ ॥

दोहा ।

सुर समूह ढोलैं चमर, चंदकिरण दुति जेम ।
नवतनबधू कटाक्षसे, चपल चलैं अति एम ॥
छिन छिन ढलके स्वामि पर, सोहत ऐसो भाव ।
किधौं कहत सिधिलच्छिसों जिनपतिकेढिंगआव

चौपाई ।

शीश छत्र सिंहासन तलैं। दिपै देह दुति चामर ढलैं॥ बाजैं दुंदुभि वरषैं फूल। ढिंग अशोक वाणी सुखमूल॥ इहिविधि अनुपम शोभामान । सुरनरसभापदमनीभान ॥ लोकनाथ बंदे शिरनाय । सो हम शरण होउ जिनराय ॥ ९ ॥ सुरगजदंतकमलवनमाहिं। सुरनारीगण नाचत जाहिं॥ बहुविधि बाजे बाजैं थोक। सुन उछाह उपजे तिहुंलोक॥ हर्षित हरि जय जय उच्चरे । सुमनमाल अपछर करधरै ॥ यों जन्मादि समय तुम होय। जयो देव देवागम सोय ॥१०॥ तोष बढावन तुम मुखचंद । जननैनामृत भरन अमंद॥ सुंदर दुतिकर अधिक उजास । तीन भवन नाहिं उपमातास ॥ ताहि निरख सनयन

हम भये। लोचनआज सुफल करलये ॥ देखन योग्य जगतमैं देख। उमग्यो उरआनंद विशेख। ॥ ११ ॥ कोइक यों मानै मतिमंद । विजित-काम विधि ईश मुकुंद ॥ ये तो हैं वनितावश-दीन। कामकटकजीतनवलहीन ॥ प्रभु आगें सुरकामिनि करैं। ते कटाछ सव खाली परें ॥ यातैं मदनविध्वंसन वीर । तुमभगवंत और नहिं धीर ॥१२॥ दर्शनप्रीति हिये जव जगी। तवै आम्र कोंपल वहु लगी ॥ तुम समीप उठ आवन ठयो। तवसों सघन प्रफुल्लित भयो ॥ अ-व हूं निज नैनन ढिंग आय। मुखमयंक देख्यो जगराय ॥ मेरो पुन्यविरख इस वार । सुफल-फल्यो सवसुखदातार ॥ १३ ॥

दोहा।

त्रिभुवन वनमैं विस्तरी, काम दवानल जोर।
वाणीवरषाभरणसों, शांति करहु चहुं ओर ॥
इंद्र मोर नाचै निकट, भक्तिभाव धर मोह। मेघ
सघन चौवीस जिन, जैवंते जग होय ॥ १४ ॥

चौपाई ।

भविजनकुमुदचंदसुखदैन । सुर नर नाथप्रमुख जगजैन ॥ ते तुम देख रमैं इस भांति । पहुप-गेह लह ज्यों अलिपाँति ॥ शिरधर अंजुलि भक्तिसमेत । श्रीगृहप्रति परिदक्षण देत ॥ शिवसुखकीसी प्रापति भई । चरण छांहसों भव तप गई ॥ १५ ॥ वह तुम पदनखदर्पण देव । परम पूज्य सुंदर स्वयमेव ॥ तामें जो भवि भाग-विशाल । आननआविलोकै चिरकाल ॥ कमला कीरति कांति अनूप । धीरजप्रमुख सकल सुख रूप ॥ वे जग मंगल कौन महान । जो न लहैं वह पुरुष प्रधान ॥ १६ ॥ इंद्रादिक श्रीगंगा जेह । उत्पतिथान हिमाचल येह ॥ जिनमुद्रा-मंडित अतिलशै । हर्ष होय देखे दुख नशै ॥ शिखर ध्वजागण सोहैं एम । धर्म सुतरुवर पल्लव जेम ॥ यों अनेक उपमा आधार । जय जिनेश जिनआलयसार ॥ १७ ॥ शीश नवाय नमत सुरनार । केशकांतिमिश्रित मनहार ॥ नखउ-द्योत बरतै जिनराज । दशादिश पूरित किरण

समाज ॥ स्वर्गनागनरनायक संग । पूजत पायपदम अतुलंग ॥ दुष्टकर्मदलदलन सुजान । जैवंते वरतो भगवान ॥ १८ ॥ सो कर जागै जो धीमान । पंडित सुधी सुमुख गुणवान ॥ आपन मंगलहेतु प्रशस्त । अवलोकन चाहै कछु वस्त ॥ और वस्तु देखै किस काज । जो तुम मुखराजै जिनराज ॥ तीनलोकको मंगल-थान । प्रेक्षणीय तिहंजग कल्यान ॥ १९ ॥ धर्मोदय तापसगृहकीर । काव्यबंधवनपिक तुम वीर ॥ मोक्षमल्लिका मधुपरसाल । पुन्यकथा कजसरसि मराल । तुम जिनदेव सुगुणमणि-माल । सर्व हितंकर दीनदयाल ॥ ताको कौन न उन्नतकाय । धरै किरीट माहिं हर्षाय॥२०॥केई वांछै शिवपुरवास । केई करै स्वर्गसुख आस । पचै पँचानल आदिक ठान । दुःख बंधे जस बंधे अयान ॥ हम श्रीमुख वानी अनुभवें । सरधा पूरव हिरदै ठवैं । तिस प्रभाव आनंदित रहैं । स्वर्गादिक सुख सहजे लहैं ॥ २१ ॥ न्होनमहो-च्छव इंद्रन कियो । सुरतियमिलमंगलपढलियो ।

सुयश शरद-चंद्रोपम सेत । सो गंधर्व गान कर लेत ॥ और भक्ति जो जो जिस जोग । शेष सुरन कीनी सुनियोग । अब प्रभु करैं कौन-सी सेव । हमचित भयो हिंडोलो एव ॥ २२ ॥ जिनवर जन्मकल्यानक धोस । इंद्र आप नाचै कर होस । पुलकितअंग पिताघर आय । नाचत विधिमैं महिमा पाय ॥ अमरी वीन बजावै सार । धरी कुचाग्र करत झंकार । इहि विधि कौतुक देख्यो जबै । औसर कौन कह सकै अबै ॥ २३ ॥ श्रीप्रतिविंब मनोहर एम । विकसित वदन कमल दल जेम । ताहि हेर हरषे दृग दोय । कह न सकूं इतनो सुख होय ॥ तब सुरसंग कल्यानक काल । प्रघटरूप जोवे जगपाल ॥ इकटक दिष्ट एक चित लाय । वह आनंद कहा क्यों जाय ॥ २४ ॥ देख्यो देव रसायन धाम । देख्यो नवनिधिको विसराम ॥ चिंता रयन सिद्धिरस अबै । जिनगृह देखत देखे सबै ॥ अथवा इन देखे कछु नाहिं । यह अनुगामी फल जगमाहिं ॥ स्वामी सस्यो अपूरव काज ।

मुक्ति समीप भई मुझ आज ॥ २५ ॥ अब वि-
नवै भूपाल नरेश । देखे जिनवर हरन कलेश ॥
नेत्र कमल विकसे जगचंद । चतुर चकोर करण
आनंद ॥ थुति जलसों यों पावन भयो । पाप
ताप मेरो मिट गयो । मो चित है तुम चरणन
माहिं । फिर दर्शन दीजे अब जाहिं ॥ २६ ॥

छप्पय ।

इहिविधि बुद्धिविशालराय भूपाल महाकवि ।
कियो ललित थुतिपाठ हिये सब समझ सकै
नवि ॥ टीकाके अनुसार अर्थ कछु मनमें आयो ।
कहीं शब्द कहिं भाव जोड भाषा यश गायो ॥
आतम पवित्रकारण किमपि, बाल ख्याल सो
जानियो । लीज्यो सुधार भूधरतणी, यह वि-
नती बुध मानियो ॥ १ ॥

इति भूधरकृत भूपालचौवीसी स्तोत्र ॥ २९ ॥

(३०)

अथ भूधरदासजीकृत बारह भावना ।

१ अनित्यभावना ।

दोहा ।

राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार ।

मरना सबको एकदिन, अपनी अपनी वार॥१॥

२। असरनभावना।

दलबल देई देवता, मातपिता परिवार।
मरतीविरियां जीवको, कोऊ न राखन हार॥२॥

३। संसारभावना।

दामविना निरधन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसारमें, सब जग देख्यो छान॥३॥

४। एकत्व भावना।

आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय।
यों कबहूं या जीवको, साथी सगो न कोय॥४॥

५। अन्यत्वभावना।

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥५॥

६। अशुचित्वभावना।

दिपै चामचादरमढ़ी, हाड-पींजरा देह।
भीतर या सम जगतमें, और नहीं घिनगेह॥६॥

७। आस्रवभावना। सोरठा।

मोहनींदके जोर, जगवासी घूमै सदा।
कर्मचोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुधि नहीं॥७॥

८। संवरभावना।

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपसमै।

तव कुछ बनै उपाय, कर्मचोर आवत रुकें ॥८॥

९ । निर्जराभावना । दोहा ।

ज्ञानदीप तप तेलभर, घर शोधै भ्रम छोर ।
याविध विन निकसैं नहीं, पैठे पूरव चोर ॥९॥
पंचमहाव्रत संचरन, समिति पंचपरकार ।
प्रवल पंच इंद्रियविजय, धार निर्जरा सार।१०।

१० । लोकभावना ।

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुषसंठान ।
तामैं जीव अनादितैं, भरमत है विनज्ञान ॥११॥

११ । बोधिदुर्लभभावना ।

धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ १२ ॥

१२ । धर्मभावना ।

जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन ।
विन जांचे विन चिंतये, धर्म सकल सुखदैन १३

इति भूधरदासकृत बारह भावना ॥ ३० ॥

१—रत्नत्रयकी प्राप्ति । २ चिंतामणि रत्न ।

(३१)

अथ श्रीमानतुंगाचार्यविरचित आदिनाथस्तोत्र ।

(भक्तामर स्तोत्र)

वसंततिलका ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा,-मुद्योतकं दलितपापतमोवितानं । सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा,-वालंबनं भवजले पततां जनानां॥ १॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा,-दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रं॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ ! स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं । बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंब,-मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुं॥ ३ ॥ वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या । कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्यां॥ ४ ॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगत-

शक्तिरपि प्रवृत्तः । प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी
मृगेंद्रं, नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं
॥ ५ ॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भ-
क्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां । यत्कोकिलः कि-
ल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिक-
रैकहेतु ॥ ६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजां । आक्रांत-
लोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शा-
र्वरमंधकारं ॥ ७ ॥ मत्वेति नाथ तव संस्तव-
नं मयेद,—मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्यु-
तिमुपैति ननूदबिंदुः ॥८॥ आस्तां तव स्तवन-
मस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरिता-
नि हंति । दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरे-
षु जलजानि विकासभांजि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं
भुवनभूषण भूतनाथ !, भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभि-
ष्टुवंतः । तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥
दृष्ट्वा भवंतमनिमेषविलोकनीयं, नान्यत्र तोष-

मुपयाति जनस्य चक्षुः । पीत्वा पयः शशिक-
रद्युतिदुग्धसिंधोः, क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क
इच्छेत् ॥११॥ यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभि-
स्त्वं, निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत । तावंत
एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां, यत्ते समानमपरं
न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥ वक्त्रं क्व ते सुरनरो-
रगनेत्रहारि, निश्शेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमा-
नं । बिंबं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वास-
रे भवति पांडुपलाशकल्पं ॥ १३ ॥ संपूर्णमंड-
लशशांककलाकलाप,-शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव
लंघयंति । ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,क-
स्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टं ॥ १४ ॥ चित्रं
किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्, नीतं मनागपि
मनो न विकारमार्गं । कल्पांतकालमरुता चलि-
ताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्
॥ १५ ॥ निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः, कृत्स्नं
जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि । गम्यो न जातु म-
रुतां चलिताचलानां,दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ज-
त्प्रकाशः ॥ १६ ॥ नास्तं कदाचिदुपयासि न

राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति ।
नांभोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायि-
महिमासि मुनींद्र लोके ॥ १७ ॥ नित्योदयं द-
लितमोहमहांधकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वा-
रिदानां । विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिंबं ॥ १८ ॥ किं
शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा, युष्मन्मुखेंदु-
दलितेषु तमस्सु नाथ । निष्पन्नशालिवनशा-
लिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जलभार-
नम्रैः ॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृता-
वकाशं, नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु । तेजः
स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं, नैवं तु काचश-
कले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥ मन्ये वरं हरिहरा-
दय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्म-
नो हरति नाथ भवांतरेऽपि ॥२१॥ स्त्रीणां शता-
नि शतशो जनयंति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं
जननी प्रसूता । सर्वा दिशो दधाति भानि सहस्र-
रश्मिं, प्राच्येव दिग् जनयाति स्फुरदंशुजालं ।२२।

त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस,-मादित्यवर्णम-
मलं तमसः पुरस्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य ज-
यंति मृत्युं,नान्यः शिवश्शिवपदस्य मुनींद्र पंथाः
॥२३॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,ब्रह्मा-
णमीश्वरमनंतमनंगकेतुं । योगीश्वरं विदितयो-
गमनेकमेकं,ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ।२४।
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोऽसि
भुवनत्रयशंकरत्वात् । धातासि धीर शिवमार्ग-
विधेर्विधानाद्,व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि
॥२५॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ, तुभ्यं
नमः क्षितितलामलभूषणाय । तुभ्यं नमस्त्रिजगतः
परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ।
।२६। को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै,-स्त्वं सं-
श्रितो निरवकाशतया मुनीश । दोषैरुपात्तवि-
विधाश्रयजातगर्वैः, स्वप्नांतरेऽपि न कदाचिदपी-
क्षितोऽसि । २७ ॥ उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयू-
ख,-माभातिरूपममलं भवतो नितांतं । स्पष्टोल्लस-
त्किरणमस्ततमोवितानं, बिंबं रवेरिव पयोधर-
पार्श्ववर्त्ति ॥२८ ॥ सिंहासने मणिमयूखशिखा-

विचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातं । बिंबं
वियद्विलसदंशुलतावितानं, तुंगोदयाद्रिशिरसी-
व सहस्ररश्मेः ॥२९॥ कुंदावदातचलचामरचारु-
शोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतं । उद्य-
च्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार,-मुच्चैस्तटं सुरगिरे-
रिव शातकौंभं ॥ ३० ॥ छत्रत्रयं तव विभाति
शशांककांत,-मुच्चैस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं, प्रख्यापयत्त्रिज-
गतः परमेश्वरत्वं ।३१। गंभीरतारवपूरितदिग्वि-
भाग,स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः । सद्धर्म-
राजजयघोषणघोषकःसन्, खे दुंदुभिर्ध्वनति ते
यशसःप्रवादी ॥ ३२ ॥ मंदारसुंदरनमेरुसुपा-
रिजात,-संतानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा । गंधो-
दबिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्या दिवः पतति ते
वयसां ततिर्वा ॥३३॥ शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा
विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या जयत्य-
पि निशामपि सोमसोम्यां ॥३४॥ स्वर्गापवर्गग-
ममार्गविमार्गणेष्टः,सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलो-

क्या: । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व,-भाषा स्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥ उन्निद्र-हेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखा-भिरामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥३६॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य । यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल,-मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं । ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ॥ ३८ ॥ भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त,-मुक्ताफलप्रकर भूषितभूमिभागः । बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥ कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगं । विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतंतं, त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषं ४० रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतं । आक्रामति क्रमयुगेण निर-

स्त्वशंक,-स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः॥४१॥
वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद,-माजौ बलं बलव-
तामपि भूपतीनां । उद्यद्दिवाकरमयूखशिखाप-
विद्धं, त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति । ४२ ।
कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह,वेगावतारतरणा-
तुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा,-
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ।४३। अंभो-
निधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र,-पाठीनपीठभयदोल्ब
णवाडवाग्नौ । रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा,-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजंति ॥ ४४ ॥
उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,शोच्यां दशामु
पगताश्च्युतजीविताशाः । त्वत्पादपंकजरजामृ-
तदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः
॥ ४५ ॥ आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा, गाढं
बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः । त्वन्नाममंत्रमनिशं
मनुजाः स्मरंतः, सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवंति
॥४६॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवा-,
रिधिमहोदरबंधनोत्थं । तस्याशु नाशमुपयाति
भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।

।४७। स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पां । धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमानतुंगाचार्यविरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तं ॥ ३१ ॥

---

[३२]

आचार्यश्रीमदुमास्वामिविरचितं

मोक्षशास्त्रं ।

अपरनाम

(तत्त्वार्थसूत्रं]

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥ २ ॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥ जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥ ४ ॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥ ५ ॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणास्थितिविधानतः ।७। सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥ ८ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि

ज्ञानं ॥ ९ ॥ तत्प्रमाणे ॥ १० ॥ आद्ये परोक्षं ॥ ११ ॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थांतरं ॥ १३ ॥ तदिंद्रियानिंद्रियनिमित्तं ॥ १४ ॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः ॥ १५ ॥ वहुवहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणां ॥ १६ ॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ न चक्षुरानिंद्रियाभ्यां ॥१९॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥ २० ॥ भवप्रत्ययोवधिर्देवनारकाणां । २१ । क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां । २२ । ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः । २३ । विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः । २४ । विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥ २५ ॥ मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु । २६ । रूपिष्ववधेः । २७ । तदनंतभागे मनःपर्ययस्य । २८ । सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य । २९ । एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः । ३० । मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च । ३१ । सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् । ३२

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ५ गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ६ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥ उपयोगो लक्षणं ॥ ८ ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ द्वींद्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पंचेंद्रियाणि ॥ १५ ॥ द्विविधानि ॥ १६ ॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ॥ १७ ॥ लब्ध्युपयोगौ

भावेंद्रियं ॥ १८ ॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः॥२०॥ श्रुतमनिंद्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यंतानामेकं॥२२ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥ २३ ॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥ अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥ संमूर्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥ जरायुजांडजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥ देवनारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां संमूर्च्छनं । ३५ । औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥ परं परं सूक्ष्मं ॥ ३७ ॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥३८॥ अनंतगुणे परे ॥ ३९ ॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादिसंबंधे च ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥ निरुपभो-

गमंत्यं ॥ ४४ ॥ गर्भसमूर्च्छनजमाद्यं ॥ ४५ ॥ औपपादिकं वैक्रियिकं ॥ ४६ ॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥ न देवाः ॥ ५१ ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

रत्नशर्कराबालुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः १ तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं ॥ २ ॥ नारका नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥ द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः

॥ ८ ॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्र-
विष्कंभो जंबूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरतहैमवतहरिवि-
देहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥
तद्विभाजिनः पूर्वापरायताः हिमवन्महाहिमव-
न्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥
हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥ म-
णिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्याविस्ताराः १३
पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुंडरीकपुंडरीका
ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजनसहस्रा-
यामस्तदर्द्धविष्कंभो ह्रदः ॥ १५ ॥ दशयोजना-
वगाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥
तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥
तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिल-
क्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः
॥ १९ ॥ गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकां-
तासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलार-
क्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयो-
र्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः २२
चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिंध्वादयो नद्यः

॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य । २४ । तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांताः ॥ २५ । उत्तरा दक्षिणतुल्याः । २६ । भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्यां ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः । २८ । एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदेवकुरवकाः । २९ । तथोत्तराः ॥ ३० ॥ विदेहेषु संख्येयकालाः । ३१ । भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः । ३२ । द्विर्धातकीखंडे । ३३ । पुष्करार्द्धे च । ३४ । प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः । ३५ । आर्य्या म्लेच्छाश्च । ३६ । भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः । ३७ । नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमांतर्मुहूर्ते । ३८ । तिर्यग्योनिजानां च ।३९।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ।१। आदितस्त्रिषु पीतांतलेश्याः ।२। दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाःकल्पोपपन्नपर्यंताः । ३ । इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंश-

त्पारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियो-
ग्यकिल्विषिकाश्चैकशः । ४ । त्रायस्त्रिंशल्लोक-
पालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ५ पूर्वयोर्द्वींद्राः ६
कायप्रवीचारा आ ऐशानात् । ७ । शेषाः स्प-
र्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः । ८ । परेऽप्रवीचा-
राः । ९ । भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णा-
ग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥
व्यंतराः किन्नरकिंपुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्ष-
सभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्याचं-
द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च । १२ ।
मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके । १३।
तत्कृतः कालविभागः । १४ । बहिरवस्थिताः
। १५ । वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः
कल्पातीताश्च ॥ १७ । उपर्युपरि । १८ । सौ-
धर्मैशानसानत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवका-
पिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणत-
योरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयंत-
जयंतापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च । १९ । स्थि-
तिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धींद्रियावधिविषय-

तोऽधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमा-
नतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रि-
शेषेषु ॥ २२॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३॥
ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥ २४ ॥ सारस्व-
तादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च
॥ २५ ॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औ-
पपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥
स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रि-
पल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैशान-
योः सागरोपमे अधिके ॥२९॥ सानत्कुमारमा-
हेंद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोद-
शपंचदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥ आरणाच्यु-
तादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु स-
र्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकं
॥ ३३ ॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानंतराः ॥ ३४॥
नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५॥ दशवर्षसह-
स्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥
व्यंतराणां च ॥३८॥ परा पल्योपममधिकं ३९
ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ४१

लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ।४२।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि ॥२ ॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानां ॥ ८ ॥ आकाशस्यानंताः ॥ ९ ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां । १० । नाणोः । ११। लोकाकाशेऽवगाहः ।१२। धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।१३। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानां । १४ । असंख्येयभागादिषु जीवानां॥ १५ ॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् । १६ । गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः । १७ । आकाशस्यावगाहः ।१८। शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानां १९ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च । २० । परस्परोपग्रहो जीवानां । २१ । वर्त्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य । २२ । स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः । २३ । शब्दबंधसौक्ष्म्यस्थौल्य-

संस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवंतश्च ॥२४॥ अ-
णवः स्कंधाश्च ।२५। भेदसंघातेभ्य उत्पद्यंते२६
भेदादणुः । २७ । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ।२८।
सद्द्रव्यलक्षणं । २९ । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्
। ३० । तद्भावाव्ययं नित्यं । ३१ । अर्पितानर्पि-
तसिद्धेः ।३२। स्निग्धरूक्षत्वाद् बंधः ३३ न-ज-
घन्यगुणानां ।३४। गुणसाम्ये सदृशानां । ३५ ।
द्व्याधिकादिगुणानां तु ३६ बंधेऽधिकौ पारिणा-
मिकौ च ।३७। गुणपर्ययवद्द्रव्यं ॥ ३८ ॥ काल-
श्च ।३९। सोऽनंतसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया नि-
र्गुणा गुणाः ।४१। तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥ सआस्रवः
२ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सक-
षायाकषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥
इंद्रियकपायाव्रतक्रियाःपंचचतुः पंचपंचविंशति-
संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥ तीव्रमंदज्ञाताज्ञात-
भावाधिकरणवीर्यविशेषभ्यस्तद्विशेषः ॥६॥ अ-
धिकरणं जीवाजीवाः ॥७॥ आद्यं संरंभसमारं-

भारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रि-
स्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोग-
निसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं । ९ । तत्प्रदोष-
निह्नवमात्सर्यांतरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शना-
वरणयोः ॥१०॥ दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरि-
देवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥
भूतवृत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः
शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलश्रुतसंघ-
धर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायो-
दयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वा-
रंभपरिग्रहत्वं नारकास्यायुषः ॥ १५ ॥ माया
तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥ अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानु-
षस्य । १७ । स्वभावमार्दवं च । १८ । निःशी-
लव्रतित्वं च सर्वेषां । १९ । सरागसंयमासंयमा-
कामनिर्जराबालतपांसि देवस्य । २० । सम्यक्त्वं
च । २१ । योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य
नाम्नः । २२ । तद्विपरीतं शुभस्य । २३ । दर्शन-
विशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभी-
क्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी सा-

धुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचन-
भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचन-
वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ।२४। परात्मनिंदा-
प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्र-
स्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तर-
स्य । २६ । विघ्नकरणमंतरायस्य । २७ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥ १ ॥
देशसर्वतोणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः
पंच पंच ।३। वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमि-
त्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥ ४ ॥ क्रोधलो-
भभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच
।५। शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरण-
भैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाःपंच ।६। स्त्रीरागक-
थाश्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मर-
णवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ॥ ७ ॥
मनोज्ञामनोज्ञेंद्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ।८।
हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥९॥ दुःख-
मेव वा । १० । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि

च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु । ११ । जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थं । १२ । प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा । १३ । असदभिधानमनृतं । १४ । अदत्तादानं स्तेयं । १५ । मैथुनमब्रह्म । १६ । मूर्च्छा परिग्रहः । १७ । निःशल्यो व्रती । १८ । अगार्यनगारश्च । १९ । अणुव्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागवृतसंपन्नश्च ॥२१॥ मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता २२ शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः २३ वृतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥ २४ ॥ वंधवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥ २५॥मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ॥२६॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसु-

वर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः २९ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१॥ कंदर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसंबंधसंमिश्राभिषवदुःपक्काहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥१॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः॥३॥आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवे-

दर्नीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥४॥ पंच-
नवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा य-
थाक्रमं ॥ ५ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवला-
नां ॥६॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रा-
निद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥
सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्रमोहनीया-
कषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः
सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हा-
स्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अ-
नंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविक-
ल्पाश्चैकशःक्रोधमानमायालोभाः । ९ । नार-
कतैर्यग्योनमानुषदैवानि । १० । गतिजातिश-
रीरांगोपांगनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहनन-
स्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघाता-
तपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीर-
त्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशः
कीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचै-
श्च ॥१२॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणां ॥१३॥
आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोप-

मकोटीकोट्यः परा स्थितिः । १४ । सप्ततिर्मोह-
नीयस्य । १५ । विंशतिर्नामगोत्रयोः । १६ ।
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः । १७ । अपरा
द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य । १८ । नामगोत्रयो-
रष्टौ । १९ । शेषाणामंतर्मुहूर्त्ता । २० । विपा-
कोऽनुभवः । २१ । स यथानाम । २२ । ततश्च
निर्जरा । २३ । नामप्रत्ययाः सर्वतो योगवि-
शेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्व-
नंतानंतप्रदेशाः । २४ । सद्वेद्यशुभायुर्नामगो-
त्राणि पुण्यं । २५ । अतोऽन्यत्पापं । २६ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

आस्रवनिरोधः संवरः । १ । स गुप्तिसमिति-
धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥ तपसा नि-
र्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ई-
र्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥
उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागा-
किंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्याशरण-
संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोक-
बोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः॥७

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।८।
क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या-
निषद्याशय्याक्रोशवधयाच्ञालाभरोगतृणस्पर्श-
मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥
सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥ १०॥
एकादश जिने ॥ ११ ॥ बादरसांपराये सर्वे । १२
ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने । १३ । दर्शनमोहांतराययो-
रदर्शनालाभौ । १४ । चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्री
-निषद्याक्रोशयाच्ञासत्कारपुरस्काराः । १५ । वेद-
नीये शेषाः ॥ १६ ॥ एकादयो भाज्या युगपदेक-
स्मिन्नैकोनविंशतिः ॥ १७ ॥ सामायिकच्छेदोप-
स्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्या-
तमिति चारित्रं ॥ १८ ॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिप-
रिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्ले-
शा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्य-
स्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥२०॥ नवचतुर्द-
शपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आ-
लोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद-
परिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रो-

पचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्य-
ग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥२४॥वाचना-
पृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।२५। बाह्याभ्यं-
तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानि-
रोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्तरौद्रधर्म्य-
शुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्षहेतू ॥२९॥ आर्तमम-
नोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वा-
हारः ॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदना-
याश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरतदेशवि-
रतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥ हिंसानृतस्तेयविष-
यसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥ ३५ ॥
आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥३६॥
शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥परे केवलिनः ॥३८॥
पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरत-
क्रियानिवर्तीनि।४९त्र्येकयोगकाययोगायोगान
॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥
अवीचारं द्वितीयं ॥४२॥ वितर्कः श्रुतं ॥४३॥
वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ॥४४॥सम्यग्दृ-
ष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपको-

पशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रंथाः ॥ ४६ ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥ १ ॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥ क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥१॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ २ ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं ।
वंदे गणींद्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥ ३ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तं ॥३२॥

---

(३३)

स्वर्गीय कविवर पं० दौलतरामजीकृत

छहढाला ।

सोरठा ।

तीनभुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥

पहिली ढाल ।

चौपाई (१५ मात्रा)

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत । सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥ तातैं दुखहारी सुखकारि । कहैं सीख गुरु करुना धारि ॥ १ ॥ ताहि सुनो भवि मन

थिर आन । जो चाहो अपनो कल्यान ॥ मोह महामद पियो अनादि । भूलि आपको भरमत वादि ॥ ३ ॥ तास भ्रमनकी है बहु कथा । पै कछु कहूं कही मुनि जथा ॥ काल अनंत निगोदमझारं । वीत्यो एकेंद्रिय—तन धार ॥ ४ ॥ एक स्वासमें अठदश वार । जन्म्यो मर्‍यो भर्‍यो दुखभार ॥ निकसि भूमि जल पावक भयो । पवन प्रतेकवनस्पति थयो ॥ ५ ॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी । त्यों परजाय लही त्रसतणी ॥ लट पिपीलि अलि आदि शरीर । धर धर मर्‍यो सही वहु पीर ॥६॥ कवहूं पंचेंद्रिय पशु भयो । मनविन निपट अज्ञानी थयो ॥ सिंहादिक सैनी ह्वे क्रूर । निवल पशू हति खाये भूर ॥ ७ ॥ कवहूं आप भयो वलहीन । सवलनि करि खायो अतिदीन ॥ छेदन भेदन भूख पियास । भारवहन हिमआतपत्रास ॥ ८ ॥ वध वंधन आदिक दुख घने । कोटि जीभतें जात न भने । अति संक्लेशभावतें मर्‍यो । घोर श्वभ्रसागरमें पर्‍यो ॥ ९ ॥

तहां भूमि परसत दुख इसो। बीछू सहस डसैं नहिं तिसो। तहां राधशोणितवाहिनी। कृमिकुलकलित देहदाहिनी। १०। सैंमर तरु जुतदलअसिपत्र। असि ज्यों देह विदारैं तत्र। मेरुसमान लोह गलि जाय। ऐसी शीतउष्णता थाय। ११। तिलतिल करहिं देहके खंड। असुर भिडावैं दुष्ट प्रचंड। सिंधुनीरतैं प्यास न जाय। तो पण एक न बूंद लहाय। १२। तीनलोकको नाज जु खाय। मिटै न भूख, कणा न लहाय। ये दुख बहु सागरलौं सहै। कर्मजोगतैं नर तन लहै। १३। जननी उदर बस्यो नवमास। अंगसकुचतैं पाई त्रास। निकसत जे दुख पाये घोर। तिनकौं कहत न आवै ओर। १४। बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुणसमय तरुणीरत रह्यो। अर्धमृतकसम बूढापनो। कैसैं रूप लखै आपनो। १५। कभी अकामनिर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुरतन धरै। विषय-चाह-दावानल-दह्यो। मरत विलाप करत दुख सह्यो। १६। जो विमानवासी हू थाय। सम्यकदर्शनविन दुख पाय।

तहँतैं चय थावरतन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै। १७।

दूसरी ढाल।

पद्धरिछंद।

ऐसैं मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण,-वश भ्रमत भरत दुख जन्ममर्ण। तातैं इनको तजिये सुजान। सुन तिन संछेप कहूँ वखान॥ १॥ जीवादि प्र- योजनभूत तत्त्व। सरधै तिनमाहिं विपर्ययत्व॥ चेतनको है उपयोग रूप। विनमूरति चिनमू- रति अनूप॥२॥ पुदगल नभ धर्म अधर्म काल इनतैं न्यारी है जीवचाल॥ ताकों न जानि विपरीति मान। करि, करै देहमें निजपिछान।३। मैं सुखी दुखी मैं रंक राव। मेरो धन गृह गो- धन प्रभाव॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। वे- रूप सुभग मूरख प्रवीन॥ ४॥ तनउपजत अ- पनी उपज जानि। तननशत आपको नाश मानि॥ रागादि प्रगट जे दुःखदेन। तिनही को सेवत गिनत चैन॥ ५॥ शुभअशुभबंधके फ- लमझार। रति अरति करी निजपदविसार॥

आतमहितहेतु विराग ज्ञान। ते लखै आपको कष्टदान ॥६॥ रोकी न चाह निजशक्ति खोय। शिवरूप निराकुलता न जोय ॥ याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान ॥ ७ ॥ इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताकों जानो मिथ्याचरित्त ॥ यों मिथ्यात्वादि निसर्गजेह। अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥ ८ ॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोषैं चिर दर्शनमोह एव ॥ अंतररागादिक धरैं जेह। बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥ ९ ॥ धारैं कुलिंग लहि महतभाव। ते कुगुरु जनम-जल-उपल-नाव ॥ जे रागद्वेषमलकरि मलीन। वनिता गदादिजुत चिह्नचीन ॥ १०॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत, न तिन भवभ्रमनछेव ॥ रागादिभाव हिंसासमेत। दर्वित त्रसथावर मरनखेत ॥ ११॥ जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म। तिन सरधैं जीव लहै अशर्म ॥ याकों गृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान ॥१२॥ एकांतवाद दूषित समस्त। विषयादिकपोषक अप्रशस्त ॥

कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥ १३ ॥ जो ख्यातिलाभपूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह॥ आतम अनात्मके ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरनछीन ॥ १४॥ ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतमके हित पंथ लागि ॥ जगजालभ्रमनको देय त्यागि। अब 'दौलत' निजआतमसुपागि १५

तीसरी ढाल।

नरेंद्रछंद [जोगीरासा]

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये। आकुलता शिवमांहि न तातें, शिवमग लाग्यो चहिये॥ सम्यकदर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविध विचारो। जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥१॥ परद्रव्यनितैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है। आप रूपको जानपनो सो सम्यक्ज्ञानकला है॥ आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यकचारित सोई। अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु

नियंतको होई ॥ २ ॥ जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो । निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनके, ज्यौंको त्यौं सरधानो ॥ है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप वखानो । तिनको सुनि साम्रान्यविशेषै, दृढ़ प्रतीति उर आनौ ॥ ३ ॥ वहिरातम अंतरआतम परमातम जीव त्रिधा है । देह जीवको एक गिनै बहि-रातमतत्त्व सुधा है ॥ उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अंतरआतम ज्ञानी । द्विविधि संगविन शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥ ४ ॥ मध्यम अंतरआतम हैं जे, देशव्रती आगारी । जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनौं शिवमगचारी ॥ सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घातिनिवारी । श्रीअरहंत सकल परमातम, लोकालोकनिहारी ॥ ५ ॥ ज्ञानशरीरी त्रिविधि कर्म,-मलवार्जित सिद्ध महंता । ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता ॥ वहिरातमता हेय जानि ताजि, अंतर

१ निश्चय । मोक्षमार्गका कारण ।

आतम हूजे। परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनंद पूजे ॥ ६ ॥ चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं। पुद्गल पंच वरन रस पन गंध, दु फरसवसु जाके हैं॥ जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी। तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥ सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो। नियत वरतना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो॥ यों अजीव अव आस्रव सुनिये, मनवचकाय त्रियोगा। मिथ्या अविरत अरु कषाय पर,-मादसहित उपयोगा॥ ८ ॥ ये ही आतमके दुखकारन, तातैं इनकों तजिये। जीवप्रदेश वंधैं विधिसौं सो, वंधन कवहुं न सजिये॥ शमदमसौं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये। तपवलतैं विधिझरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये॥ ९॥ सकल करमतैं रहित अवस्था, सो शिव थिरसुखकारी। इहिविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित

१ पूरै या प्राप्त करै।

व्योहारी। देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो। येहु मान समकितको कारन, अष्टअंगजुत धारो। १०। वसु मद टारि निवारि त्रिसठता, षट अनायतन त्यागो। शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित पागो। अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपहु कहिये। विन जानेतैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये। ११। जिनवचमें शंका न धारि वृष, भवसुखवांछा भानै। मुनितन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै। निजगुन अर पर अवगुन ढांकै, वा निजधर्म वढावै। कामादिकर वृषतैं चिगते, निजपरकों सु दृढावै। १२। धर्मीसौं गउवच्छप्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै। इन गुनतैं विपरीति दोष वसु, तिनको सतत खिपावै। पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै। मद न रूपको मद न ज्ञानको, धनबलको मद भानै। १३। तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै। मद धारै तो येही दोष वसु, समकितकों मल

ठाने। कुगुरुकुदेवकुवृषसेवककी, नहिं प्रशंस उचरै है। जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है। १४। दोषरहित गुन-सहित सुधी जे सम्यकदरश सजे हैं। चारितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं। गेही पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है। १५। प्रथम नरक विन षट भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी। थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकित-धारी। तीनलोक तिहुँकाल-माहिं नहिं, दर्शनसो सुखकारी। सकलधरमको मूल यही इस, विन करनी दुखकारी। १६। मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥ 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवे॥ १७॥

चौथी ढाल।

दोहा।

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।

स्वपरअर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ।१।

रोला छंद । २४ मात्रा ।

सम्यकसाथै ज्ञान, होय पै भिन्न अराधौ। लक्षण श्रद्धा जानि, दुहूमें भेद अबाधो। सम्यककारण जान, ज्ञान कारज है सोई। युगपत होतैं हू, प्रकाश दीपकतैं होई । १ । तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिनमाहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं । अवधि ज्ञान मनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्रपरिमान लिये, जानैं जिय स्वच्छा । ३ । सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता। जानैं एकै काल, प्रगट केवलि भगवंता। ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन । इह परमामृत जन्म, जरामृतरोगनिवारन । ४ । कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान विन कर्म झरैं जे। ज्ञानीके छिनमाहिंगुप्तितैं, सहज टरैं ते॥ मुनिव्रत धार अनंतबार, ग्रीवक उपजायो। पै निजआतमज्ञान विना सुख लेश न पायो । ५ । तातैं जिनवरकथित तत्त्व, अभ्यास करीजे। संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखि-

लीजे ॥ यह मानुषपरजाय सुकुल, सुनिवो जि-
नवानी । इहविधि गये न मिलै, सुमनि ज्यों उ-
दधि समानी ॥६॥ धन समाज गज बाज, राज
तो काज न आवै । ज्ञान आपको रूप भये, फिर
अचल रहावै ॥ तास ज्ञानको कारन, स्वपरवि-
वेक बखान्यो । कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको
उर आन्यो ॥७॥ जे पूरब शिव गये, जात अब
आगे जै हैं । सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनि-
नाथ कहै हैं ॥ विषयचाह-दव-दाह, जगतजन
अरनि दझावै । तासु उपाय न आन, ज्ञानघन-
घान बुझावै ॥ ८ ॥ पुण्यपाप-फलमाहिं, हरष
विलखो मत भाई । यह पुद्गल परजाय, उपजि
विनसै थिर थाई ॥ लाख बातकी बात, यहै नि-
श्चय उर लावो ॥ तोरि सकल जगदंदफंद, निज
आतम ध्यावो ॥ ९ ॥ सम्यक्ज्ञानी होइ, बहुरि
दृढ चारित लीजे । एकदेश अरु सकल, देश-
तस भेद कहीजे ॥ त्रस हिंसाको त्याग, वृथा
थावर न सँघारै । परवधकार कठोर निंद्य,
नहिं वयन उचारै ॥ १० ॥ जल मृतिका विन

और नाहिं कछु गहै अदत्ता। निजवनिताविन सकल, नारिसौं रहै विरत्ता॥ अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै। दश दिशि गमनप्रमान, ठान तसु सीम न नांखै॥ ११॥ ताहूमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा। गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा। काहूके धन हानि, किसी जय हार न चीतै। देय न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतैं। १२। कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै। असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥ रागद्वेषकरतारकथा, कबहूं न सुनीजे। और हु अनरथ दंड, हेतुअघ तिन्हैं न कीजे॥ १३॥ धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये। पर्वचतुष्टयमाहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये॥ भोग और उपभोग, नियम करि ममतु निवारै। मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै १४ बारहव्रतके अती-चार, पन पन न लगावै। मरन-समय सन्यास, धारि तसु दोष नशावै॥ यौं

१ उलंघै।

श्रावकव्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै । तहँतैं चय नरजन्म, पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥ १५ ॥

पांचवीं ढाल ।

सखीछंद (मात्रा १४)

मुनि सकलव्रती बडभागी । भवभोगनतैं वैरागी । वैराग्यउपावन माई । चिंतो अनुप्रेक्षा भाई । १ । इन चिंतत समरस जागै । जिमि ज्वलन पवनके लागैं । जब ही जिय आतम जानै । तब ही जिय शिवसुखथानै । २ । जोवन गृह गोधन नारी । हय गय जन आज्ञाकारी ॥ इंद्रिय भोगा छिन थाई । सुरधनु चपला चपलाई ॥ ॥३॥ सुर असुर खगाधिप जेते । मृग ज्यों हरि काल दले ते ॥ मणि मंत्र तंत्र बहु होई । मरते न बचावै कोई । ४ । चहुँगतिदुख जीव भरै हैं । परिवर्तन पंच करै हैं । सबविधि संसार असारा । यामें सुख नाहिं लगारा । ५ । शुभ अशुभ करमफल जेते । भोगै जिय एकहि तेते । सुत दारा होय न सीरी । सब स्वारथके हैं भीरी । ६ । जलपय ज्यों जियतन मेला । पै भिन्न भिन्न नाहिं

भेला। तो प्रकट जुदे धन धामा। क्यों है इक-मिलि सुत रामा। ७। पल-रुधिर-राध-मल-थैली। कीकस वसादितैं मैली। नवद्वार वहैं घिनकारी। अस देह करै किम यारी। ८। जो जोगनकी चपलाई। तातैं है आस्रव भाई। आस्रव दुखकार घनेरे। बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे। ९। जिन पुण्यपाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना। तिन ही विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके। १०। निज काल पाय विधि झरना। तासौं निजकाज न सरना। तप करि जो कर्म[1] खपावै। सोई शिव सुख दरसावै। ११। किन हू न करयो न धरै को। षटद्रव्यमयी न हरै को। सो लोकमाहिं विन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता। १२। अंतिम ग्रीवकलौंकी हद। पायो अनंतविरियां पद। पर सम्यकज्ञान न लाधो। दुर्लभ निजमें मुनि साधो। १३। जे भाव मोहतैं न्यारे। दृग ज्ञान व्रतादिक सारे। सो धर्म जबै जिय धारै।

१। कर्म।

तब ही सुख अचल निहारे। १४ । सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये। ताको सुनिके भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी। १५।

छठी ढाल।

हरिगीता छंद।

षटकाय जीव न हननतें, सब विधि दरव-हिंसा टरी। रागादि भाव निवारतें, हिंसा न भावित अवतरी। जिनके न लेश मृषा न जल, तृन हू विना दीयो गहें। अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहें। १। अंतरचतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधातें टलें। परमाद तजि चउकर मही लखि, समिति ईर्यातें चलैं॥ जग सुहितकर सब अहितकर, श्रुतिसुखद सब संशय हरें। भ्रमरोग-हर जिनके वचन, मुखचंद्रतें अमृत झरें॥ २॥ छ्यालीस दोष विना सुकुलश्रावकतणे घर असनको। लें, तप बढ़ावन हेत नाहिं तन, पोखते तजि रसनको॥ शुचि ज्ञान संजम उपकरन, लखिकें गहें लखिकें

धरैं। निर्जंतु थान विलोक तन-मल, मूत्र-श्लेष-म परिहरैं ॥ ३ ॥ सम्यक प्रकार निरोधि मन-वच,-काय आतम ध्यावते। तिन सुथिरमुद्रा देखि मृगगन, उपल खाज खुजावते ॥ रसरूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न राग विरोध, पंचेंद्रियजयन पद पावने ॥ ४ ॥ समता सम्हारैं थुति उचारैं, वंदना जिनदेवको। नित करैं श्रुत रति धरैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेवको ॥ जिनके न न्हौन न दंत-धोवन, लेश अंबर आवरन। भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करन ॥५॥ इक बार दिनमें लें अहार, खड़े अलप निज पानमें। कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यानमें ॥ अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निंदन थुतिकरन। अर्घावतारन असिप्रहारनमें सदा समताधरन ॥ ६ ॥ तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा। मुनिसाथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा ॥ यों है सकल संजमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अ-

त्र। जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर-की प्रवृत्ति सब ॥ ७ ॥ निज परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अंतर भेदिया। वरनादि अरु रागादितैं, निज भावको न्यारा किया ॥ निज-माहिं निजके हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो। गुन गुनी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय,-मझार कछु भेद न रह्यो ॥ ८ ॥ जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न, विकल्प वचभेद न जहां। चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहां ॥ तीनों अभिन्न अखिन्न शुध,-उपयोगकी निश्चल दशा। प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये, तीनधा एकै लशा ॥९॥ परमान नय निक्षेपको न, उदोत अनुभव में दिखै। दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं, आन-भाव जु मो विखैं ॥ मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं। चित पिंड चंड अखंड सुगुन,-करंड च्युत पुनि कलनितैं ॥ १० ॥ यों चिंत्य निजमें थिर भये तिन, अकथ जो आनंद लह्यो। सो इंद्र नाग नरेंद्र वा, अहमिंद्रकैं नाहीं कह्यो ॥ तब ही शुकलध्यानाग्नि कर, चउघाति

विधिकानन दह्यो। सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोकको शिवमग कह्यो ॥ ११ ॥ पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिनमाहि अष्टमभू बसैं। वसुकर्म विनशै सुगुन वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥ संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये ॥ १२ ॥ निजमाहिं लोक अलोक गुन, परजाय प्रतिबिंबित थये। रहि हैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परनये ॥ धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार, तजि वर सुख लिया ॥ १३ ॥ मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं। अरु धरैंगे ते शिव लहैं, तिन सुजसजल जगमल हरैं ॥ इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो। जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं जगत निजहित करो ॥१४॥ यह रागआग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अब तौ, त्याग निजपद बेइये ॥ कहा रच्यो परप-

दमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै। अब 'दौल' होउ सुखी स्वपदराचि, दाव मत चूको यहै १५

दोहा।

इक नव वसु इक वर्षकी, तीज सुकल वैसाख। करयो तत्त्वउपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख १
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल ॥२॥

इति दौलतरामकृत छहढाला समाप्त ॥ ३३ ॥

(३४)

बीसतीर्थंकर पूजा भाषा।

दीप अढाई मेरु पन, अब तीर्थंकर वीस। तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस। १।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा! अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्। ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत। वषट्।

इंद्रफणींद्रनरेंद्रवंद्य, पद निर्मलधारी। शोभनीक संसार, सार गुण हैं अविकारी। क्षीरोदधिसम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार। सीमं-

धर जिन आदि दे, वीस विदेहमंझार । श्री-जिनराज हो भव,—तारणतरणजिहाज ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(इस पूजामें यदि वीस पुंज करना हो, तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये)

ओं ह्रीं सीमंधर-युगमन्धर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति—वज्रधर—चन्द्रानन-चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ—वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्य्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये। तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥ बावन चन्दनसों जजूं (हो), भ्रमनतपन निरवार । सीमंधर० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥ (इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तो बड़ा मंत्र पढ़ें)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी। तातैं तारे बड़ी भक्ति—नौका जग नामी ॥ तंदुल

अमल सुगंधमों (हो), पूजों तुम गुणसार ।
सीमंधर० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान निर्वपामीति स्वाहा ॥३ ॥

भविक सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो।
जतिश्रावकआचार कथनको, तुम्हीं बडे हो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदनप्रहार ।
सीमं० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

कामनाग विषधाम,-नाशको गरुड कहे हो ।
क्षुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो ।
नेवज बहुघृतमिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार ।
सीमं० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्‍यो है ।
मोहमहातम घोर, नाश परकाश कर्‍यो है ॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरता-
र । सीमं० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

कर्म आठ सब काठ,–भार विस्तार निहारा ।
ध्यान अगनिकर प्रगट, सरव कीनों निरवारा ॥
धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलैं निरधार।
सीमं० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं । सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं ॥ फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछितफलदातार ।
सीमं० । ८ ।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फल आठो दर्व, अरघ कर प्रीत धरी है ।
गणधर इंद्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है । 'द्यानत' सेवक जानके [हो], जगतैं लेहु निकार । सीमं० । ९ ।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला आरती।

सोरठा।

ज्ञानसुधाकर चंद, भविकखेतहित मेघ हो।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर वीसों नमो ॥१॥

चौपाई।

सीमंधर सीमंधर स्वामी। जुगमंधर जुगमंधर नामी।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे। करम सुबाहु बाहुबल दारे॥
जात सुजात केवलज्ञानं। स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि मानन दोषं। अनंतवीरज वीरजकोषं॥२॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं। सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं। चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं॥३॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता। श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं। नेमिप्रभू जसनेमि विराजैं॥ ४ ॥
वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महाभद्र बखानै।
नमो जसोधर जसधरकारी। नमो अजितवीरज बलधारी॥
धनुष पांचसै काय विराजै। आयु कोटिपूरब सब छाजै।
समवसरण शोभित जिनराजा। भवजलतारनतरन जिहाजा॥
सम्यक रत्नत्रयनिधि दानी। लोकालोकप्रकाशक ज्ञानी।
शत इंद्रनिकरि वंदित सोहैं। सुरनर पशु सबके मन मोहैं॥

दोहा।

तुमको पूजैं वंदना, करै धन्य नर सोय।

'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥८॥

ओं ह्रीं विद्यामानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(३५)

अथ सिद्धपूजा।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धितत्त्वान्वितं
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

निरस्तकर्मसम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयं।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवं ॥ १ ॥

(सिद्धयन्त्रकी स्थापना)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं
हीनादिभावरहितं भववीतकायम्।
रेवापगावरसरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युवि-
नाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

आनन्दकन्दजनकं घनकर्ममुक्तं
सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतं ।
सौरभ्यवासितभुवं हरिचन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशना-
य चन्दनं निर्व० ॥

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं
सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालम् ।
सौगन्ध्यशालिवनशालिवराक्षतानां
पुञ्जैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये
अक्षतान् निर्व० ॥

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतं ।
मंदारकुंदकमलादिवनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंस-
नाय पुष्पं निर्व० ॥

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोऽव्यपेतं
ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासं।
क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रं ॥५॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्यं निर्व० ॥

आतंकशोकभयरोगमदप्रशांतं
निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशम्।
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै-
र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रं ॥६॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

पश्यन्समस्तभुवनं युगपान्नितान्तं
त्रैकाल्यवस्तुविषये निविडप्रदीपं।
सद्द्रव्यगंधघनसारविमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रं ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेंद्रचक्रै-

ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैः सुवन्द्यम् ३
नारिङ्गपूगकदलीफलनारिकेलैः
सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः सङ्गं वरं चन्दनं
पुष्पाघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं
वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रम् ॥१०॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं । यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः सन्तोपि तीर्-

र्थंकराः। सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्य्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै-र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान्-विशुद्धोदयान् ॥ ११ ॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अथ जयमाला।

विराग सनातन शान्त निरंश। निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥ सुधाम विबोधनिधान विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १ ॥ विदूरितसंसृतभावनिरंग। समामृतपूरित देव विसंग ॥ अबन्ध कषायविहीन विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥ निवारितदुष्कृतकर्मविपाश सदामलकेवलकेलिनिवास ॥ भवोदधिपारग शांत विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ३ ॥ अनन्तसुखामृतसागर धीर। कलंकरजोमलभूरिसमीर ॥ विखण्डितकाम विराम विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ४ ॥ विकारविवर्जित तर्जितशोक। विबोधसुनेत्रविलोकितलोक ॥ विहार विराव विरंग विमोह। प्रसीद वि-

शुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ५ ॥ रजोमलखेदविमुक्त विगात्र । निरंतर नित्य सुखामृतपात्र ॥ सुदर्शनराजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ६ ॥ नरामरवन्दित निर्मल भाव । अनन्तमुनीश्वरपूज्य विहाव ॥ सदोदय विश्वमहेश विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ७ ॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र । परापर शंकर सार वितन्द्र ॥ विकोप विरूप विशंक विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ८ ॥ जरामरणोज्झित वीतविहार विचिन्तित निर्मल निरहंकार अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ ९ ॥ विवर्ण विगंध विमान विलोभ । विमाय विकाय विशब्द-विशोभ ॥ अनाकुल केवल सर्व विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह १० घत्ता-असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं परपरणतिमुक्तं पद्मनन्दीन्द्रवन्द्यम् ॥ निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥ ११ ॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अडिल्ल छंद ।

अविनाशी अविकारपरमरसधाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हो ।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे ।
नित्य निरंजनदेव सरूपी हो रहे ॥
ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिकें ।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥

दोहा ।

अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनंतकी खान ।
ध्यान धरै सो पाइये, परमसिद्ध भगवान ॥ २ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(३६)

समुच्चयचतुर्विंशतिजिनपूजा ।

छंद कवित्त ।

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम
सुपास जिनराय । चंद पुहुप शीतल श्रेयांस

नमि, वासपूज्य पूजितसुरराय ॥ विमल अनंत धरम जस उज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय । मुनिसुव्रत नमि नेमि पासप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र अवतर, अवतर । संवौषट् । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥

अष्टक ।

चाल द्यानतरायकृत नंदीश्वरद्वीपाष्टककी तथा गरवा रागआदि अनेक चालोंमें बनता है ।

मुनिमनसम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा ।
भरि कनककटोरी धीर, दीनों धार धरा ॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनंदकंद सही ।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

गोशीर कपूर मिलाय, केशररंग भरी ।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भवआताप हरी ॥
चौवीसों० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि० ॥

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे।
मुकताफलकी उनमान, पुंज धरों प्यारे॥
चौबीसों० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि० ॥

वर कंज कदंब करंड, सुमन सुगंध भरे।
जिन अग्र धरौं गुनमंड, कामकलंक हरे॥
चौबीसों० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि० ॥

मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादि हने॥
चौबीसों० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगे।
सब तिमिरमोह छै जाय, ज्ञानकला जागे॥
चौबीसों० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० ॥

दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हौं ।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुम पद सेवत हौं ॥
चौवीसौ० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥

शुचि पक सरस फल सार, सब रितुके ल्यायौ ।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायौ ॥
चौवीसौ० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥

जलफल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों ।
तुमको अरपों भवतार, भवतरि मोक्ष वरों ॥
चौवीसौ० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि० ॥

जयमाला ।

दोहा ।

श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत ।
गावौं गुणमाला अबै, अजरअमरपद देत ॥१॥

छंद घत्तानंद ।

जय भवतम भंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छ करा। शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौवीसों जिनराज वरा ॥ २ ॥

छंद पद्धरी।

जय रिषभ देव रिषिगन नमंत। जय आजित जीतवसुअरि तुरंत। जय संभव भवभय करत चूर। जय अभिनंदन आनंदपूर ॥ ३ ॥ जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मद्युति तन रसाल॥ जय जय सुपास भवपाशनाश। जय चंद चंदतनद्युतिप्रकाश ॥ ४ ॥ जय पुष्पदंत द्युतिदंत सेत। जय शीतल शीतलगुननिकेत ॥ जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज। जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥ ५ ॥ जय विमल विमलपददेनहार। जय जय अनंत गुनगन अपार ॥ जय धर्म धर्म शिवशर्म देत। जय शांति शांति पुष्टी करेत ॥ ६ ॥ जय कुंथु कुंथवादिक रखेय। जय अर जिन वसुअरि छय करेय ॥ जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल। जय मुनिसुव्रत व्रतसल्ल-

दल्ल ॥ ७ ॥ जय नमि नित वासवनुत सपेम। जय नेमनाथ वृषचक्रनेम ॥ जय पारसनाथ अनाथनाथ। जय वर्द्धमान शिवनगरसाथ ॥८॥

घत्तानंद छंद।

चौवीस जिनंदा आनँदकंदा पापनिकंदा सुखकारी। तिनपद जुगचंदा उदय अमंदा, वासववंदा हितधारी ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सोरठा।

भुक्तिमुक्तिदातार, चौवीसों जिनराज वर।
तिनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै ।१०।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(३७)

श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा।

छप्पय—अनोंकृत यमकालंकार तथा शब्दालंकार शान्तरस।

चारुचरन आचरन, चरन चितहरनचिहनचर।
चंदचंददतनचरिन, चंदथल चहत चतुर नर ॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर।

चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरहर ॥
चरअचरहितू तारनतरन, सुनत चहकि चिर-
नंद शुचि । जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चित-
चकोर नचि रचि रुचि ॥ १ ॥

दोहा ।

धनुष डेढसौ तुंग तन, महासेन नृपनंद ।
मातुलछमनाउर जये, थापों चंदजिनंद ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट ।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव ।
वषट् ॥

अष्टक ।

चाल- द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकको अष्टपदी तथा होलीकी तालमें, तथा गरोभा आदि अनेक चालोंमें ।

गंगाहृदनिरमलनीर, हाटकभृंगभरा ।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनमजरा ॥
श्रीचंदनाथदुति चंद, चरनन चंद लगै ।
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगै ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि० ॥ १ ॥

श्रीखंडकपूर सुचंग, केशररंग भरी।
घसि प्रासुकजलके संग, भवआताप हरी॥ श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि
तंदुल सित सोमसमान, सोंले अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन, तुमपदतर प्यारे। श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि
सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवैं।
तासों पद पूजन चंग, कामव्यथा जावैं॥ श्री०
ओं ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि०।
नेवज नानापरकार, इंद्रियबलकारी।
सो ले पद पूजों सार, आकुलताहारी॥ श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि॥ ५॥
तमभंजन दीप सँवार, तुमढिंग धारतु हों।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हों॥ श्री०
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि॥ ६॥
दशगंधहुतासनमाहिं, हे प्रभु खेवतु हों।
मम करम दुष्ट जरि जाँहि, यांतें सेवतु हों। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

अति उत्तमफल सु मंगाय, तुम गुनगावतु हों।
पूजों तनमन हरषाय, विघन नशावतु हों। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

साजि आठो दरव पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टमजिन मीत, अष्टम अवनि गमों। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक।

छंद तोटक (वर्ण १२)।

कलि पंचमचैत सुहात अली। गरभागममंगल मोद भली॥ हरि हर्षित पूजत मातु पिता। हम ध्यावत पावत शर्मसिता॥ १॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १॥

कलि पौष इकादशि जन्म लयो। सब लोकविषैं सुखथोक भयो॥ सुरईश जजें गिरशीश तबै। हम पूजत हैं नुतशीस अबै॥ २॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा। कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा ॥ निजध्यानविषैं लवलीन भये। धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

वर केवलभानु उद्योत कियो। तिहुं लोकतणों भ्रम मेट दियो ॥ कलि फाल्गुणसप्तमि इन्द्र जजे ॥ हम पूजहिं सर्व कलंक भजे ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्ति गये ॥ गुणवंत अनंत अबाध भये ॥ हरि आय जजे तित मोद धरे ॥ हम पूजत ही सब पाप हरे ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जयमाला।

दोहा।

हे मृगांकअंकितचरण, तुम गुण अगम अपार।

गणधरसे नहिं पार लहिं तौ को वरनत सार ।१।
पै तुम भगति हिये मम प्रेरै अति उमगाय ।
तातैं गाऊं सुगुण तुम तुम ही होउ सहाय ॥२॥

छंद पद्धरि (१६ मात्रा ।)

जय चन्द्र जिनेन्द्र दयानिधान । भवकानन हानन दवप्रमान ॥ जय गरभजनममंगल दिनंद । भवि जीवविकाशन शर्मकंद ॥ ३ ॥ दशलक्षपूर्वकी आयु पाय । मनवांछित सुख भोगे जिनाय ॥ लखि कारण ह्वै जगतैं उदास । चिंत्यों अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥ ४ ॥ तित लौकांतिक बोध्यो नियोग । हरि शिविका सजि धरियो अभोग ॥ तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय । ताछिनकी शोभा को कहाय ॥ ५ ॥ जिन अंग सेत सित चमर ढार । सित छत्र शीस गलगुलकहार ॥ सित रतनजड़ित भूषण विचित्र सित चन्द्रचरण चरचैं पवित्र ॥ ६ ॥ सित तन द्युति नाकाधीश आप । सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व । चितमें चिन्तत जात पर्व ॥ ७ ॥ सित

चंदनगरतैं निकसि नाथ। तित वनमें पहुंचे सकलसाथ॥ तितशिलाशिरोमणि स्वच्छछांह। तित तप तित धाऱ्यो तुम जिनाह॥ तिन पयको पारण परमसार। तित चंद्रदत्त दीनों उदार॥ तित करमें सो पयधार देत। मानों बांधत भवसिन्धुसेत॥ ९॥ मानों सुपुण्यधारा प्रतच्छ। तित अचरज पन सुर किय ततच्छ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत। तित केवलज्योति जग्यो अनंत॥ लहि समवसरणरचना महान। जाके देखत सब पापहान॥ जहँ तरु अशोक शोभे उतंग। सब शोकतनो चूरे प्रसंग॥ ११॥ सुर सुमनवृष्टि नभतें सुहात। मनु मन्मथ तज हथियार जात॥ वानी जिन मुखसों खिरत सार। मनु तत्त्वप्रकाशन मुकुर धार॥ १२॥ जहँ चौसठ चमर अमर ढुरंत। मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत। सिंहासन है जहं कमलजुक्त। मनु शिवसरवरको कमलशुक्त॥ १३॥ दुंदुभि जितबाजत मधुर सार। मनु करमजीतको है नगार॥ शिर छत्र फिरैं त्रय श्वेत वर्ण। मनु

रतन तीन त्रयताप हर्ण ॥ १४ ॥ तनप्रभातनों मंडल सुहात। भवि देखत निजभव सात सात ॥ मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय। भविजन भव मुख देखत सुआय ॥ १५ ॥ इत्यादि विभूति अनेक जान। बाहिज दीसत महिमा महान ॥ ताको वरणत नहिं लहत पार। तौ अन्तरंग को कहै सार ॥ १६ ॥ अनअंत गुणनिजुत करि विहार। धरमोपदेश दे भव्य तार ॥ फिर जोगनिरोधि अघाति हान। सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥ १७ ॥ बृन्दावन बन्दत शीश नाय। तुम जानत हो मम उर जु भाय ॥ तातैं का कहौं सु बार बार। मनवांछित कारज सार सार ॥१८॥

छंद घत्तानंद।

जय चंदजिनंदा आनंदकंदा, भवभयभंजन राजै हैं ॥ रागादिकद्वंदा हरि सब फंदा, मुकतिमांहि थिति साजै हैं ॥ १९ ॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

छंद चौबोला।

आठों दरव मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजैं॥ ताकैं भवभवके अघ भाजैं, मुक्तसारसुख ताहि सजैं॥ २०॥ जमके त्रास मिटैं सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं। वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं॥ २१॥

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

इति श्रीचन्द्रप्रभजिनपूजा समाप्त॥ ८॥

(३८)

श्रीवासुपूज्य जिनपूजा।

छंदरूप कवित्त।

श्रीमतवासुपूज्य जिनवरपद, पूजनहेत हिये उमगाय। थापों मनवचतन शुचि करिकैं, जिनकी पाटलदेव्या माय॥ महिष चिह्न पद लसै मनोहर, लाल वरन तन समतादाय। सो करुनानिधि कृपादृष्टिकरि, तिष्ठहु सुपरितिष्ट यह आय॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ, ठः ठः
ओं ह्रीं श्रीवासुपुज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव ।
वषट् ॥ ३ ॥

अष्टक ।

छंद जोगीरासा । आंचलीबंध "जिनपदपूजौं लवलाई ॥"

गंगाजल भरि कनककुंभमें, प्रासुक गंध मिलाई । करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई ॥ जिनपद पूजौं लवलाई ॥ वासुपूज वसुपूजतनुज पद, वासव सेवत आई । बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई ॥ जिन० ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

कृष्णागरु मलयागिरिचंदन, केशरसंग घसाई । भवआताप विनाशनकारन, पूजों पद चित लाई ॥ वा० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

देवजीर सुखदास शुद्ध वर, सुवरनथार भराई । पुंजधरत तुम चरनन आगें, तुरित अखय पद पाई ॥ वा० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पारिजात संतानकल्पतरु,—जनित सुमन बहु लाई। मीनकेतुमदभंजनकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई ॥ वा० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व०

नव्यगव्यआदिकरसपूरित, नेवज तुरित उपाई। छुधारोग निरवारनकारन, तुम्हें जजों शिरनाई

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि०

दीपकजोत उदोत होत वर, दशदिसमें छवि छाई। तिमिरमोहनाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई ॥ वा० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

दशविध गंधमनोहर लेकर, वातहोत्रमें डाई। अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उड़ाई।७

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

सुरस सुपक्वसुपावन फल लै, कंचनथार भराई।

मोच्छ महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरौं गुनगाई ॥ वा० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥८॥

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई। शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरौं यह लाई ॥ वा० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्रायअनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं नि० ।९।

पंचकल्याणक ।

छंद पाईता (मात्रा १४)।

कलि छट्ठ असाढ़ सुहायौ। गरभागम मंगल पायौ ॥ दशमें दिवितें इत आये। शतइंद्र जजे सिर नाये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घं निर्व० ।

कलि चौदश फागुन जानों। जनमे जगदीश महानों। हरि मेर जजे तब जाई। हम पूजत हैं चितलाई ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीफाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीवा-सुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० ।

तिथि चौंदस फागुन श्यामा। धरियो तप श्री-
अभिरामा॥ नृप सुंदरके पय पायो। हम पूजत
अतिसुख थायो॥ ३॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णाचतुर्दश्यां तपोमंगलप्राप्ताय श्रीवासुपू-
ज्यजिनेन्द्राय अर्घं नि०।

वदि भादव दोइज सोहै। लहि केवल आतम
जोहै॥ अनअंत गुनाकर स्वामी। नित वंदौं
त्रिभुवन नामी॥ ४॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णाद्वितीयायां केवलज्ञानमण्डिताय श्रीवासु-
पूज्यजिनेन्द्राय अर्घं नि०।

सित भादवचौदशि लीनों।। निरवान सुथान
प्रवीनों॥ पुर चंपाथानकसेती। हम पूजत नि-
जहित हेती॥ ५॥

ओं ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलप्राप्ताय श्रीवासुपू-
ज्यजिनेन्द्राय अर्घं नि०।

जयमाला।

दोहा।

चंपापुरमें पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय॥१॥

छंद मोतियदाम (वर्ण १२)।

महासुखसागर आगर ज्ञान। अनंत सुखामृत-
भुक्त महान॥ महाबलमंडित खंडितकाम। र-
माशिवसंग सदा विसराम॥ २॥ सुरिंद फनिंद
खगिंद नरिंद। मुनिंद जजैं नित पादरविंद॥
प्रभू तुव अंतरभाव विराग। सुबालहितें व्रतशी-
लसौं राग॥३॥ कियो नहिं राज उदाससरूप।
सुभावन भावत आतमरूप॥ अनित्य शरीर
प्रपंच समस्त। चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त
॥ ४॥ अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय। जहां
जिय भोगत कर्मविपाय॥ निजातमकै परमे-
सुर शर्न। नहीं इनके विन आपदहर्न॥ ५॥
जगत्त जथा जलबुद्बुद येव। सदा जिय एक
लहै फलभेव॥ अनेकप्रकार धरी यह देह। भमैं
भवकानन आन न नेह॥ ६॥ अपावन सात
कुधात भरीय। चिदातम शुद्धसुभाव धरीय॥
धरै इनसौं जब नेह तबेव। सुआवत कर्म तबै
वसुभेव॥ ७॥ जबै तनभोगजगत्तउदास। धरै
तब संवर निर्जरआस॥ करै जब कर्मकलंक

विनाश । लहैं तब मोक्ष महासुखराश ॥ ८ ॥
तथा यह लोक नराकृत नित्त । विलोकिय ते
षटद्रव्यविचित्त ॥ सुआतमजानन बोधविहीन ।
धरैं किन तत्त्वप्रतीत प्रवीन ॥ ९ ॥ जिनागम-
ज्ञान रु संजमभाव । सबै निजज्ञान विना विर-
साव ॥ सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल । सुभाव
सबै जिहतें शिव हाल ॥ १० ॥ लयो सब जोग
सुपुन्य वशाय । कहो किमि दीजिये ताहि गँ-
वाय ॥ विचारत यों लवकान्तिक आय । नमैं
पदपंकज पुष्प चढ़ाय ॥ ११ ॥ कह्यो प्रभु धन्य
कियो सुविचार । प्रबोधि सु येम कियो जु वि-
हार ॥ तबै सवधर्मतनो हरि आय । रच्यो शि-
विका चढ़ि आप जिनाय ॥ धरे तप पाय सुकें-
वलबोध । दियो उपदेश सुभव्य संबोध ॥ लियो
फिर मोक्ष महासुखराश । नमैं नित भक्त
सोई सुखआश ॥

घत्तानंद ।

नित वासवबन्दन, पापनिकंदन, वासपूज्य जिन

· · · · · · · · · · ·

ब्रह्मपती ! भवसंकलखंडित, आनंदमंडित्त, जै जै जै जैवंत जती ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा १४

सोरठा छंद ।

वासपूजपद सार, जजै दरबविधि भावसों ।
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्तिको जो परम १५

इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इति श्रीवासुपूज्यजिनपूजा समाप्त ॥

श्रीशान्तिनाथ जिनपूजा ।

मत्तगयंद छंद । (तथा यमकालंकार) —

या भवकाननमें चतुरानन, पापपनानन घेरि हमेरी । आतमजानन मानन ठानन, बान न होन दई सठ मेरी ॥ तानद भानन आपहि हो, यह छानन आन न आननटेरी । आन गही शरनागतको, अब श्रीपतजी पत राखहु मेरी

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ॥२॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ॥ ३ ॥

अष्टक ।

छंद त्रिभंगी । अनुप्रयासक । (मात्रा ३२ जगणवर्जित)

हिमगिरिगतगंगा,—धार अभंगा, प्रासुक संगा भरि भृंगा । जरमरनमृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदु हिंगा ॥ श्रीशान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं वृषचक्रेशं, चक्रेशं । हनि अरिचक्रेशं, हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति ॥ १ ॥

वर बावनचंदन, कदलीनंदन, घनआनंदन सहित घसों । भवतापनिकंदन, ऐरानंदन, वंदि अमंदन, चरनवसों ॥ श्री० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति० ॥ २ ॥

हिमकरकरि लज्जत, मलयसुमज्जत, अच्छतजज्जत, भरिथारी । दुखदारिद गज्जत, सदपदसज्जत, भवभय भज्जत, अतिभारी ॥ श्री० ॥३॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति० ॥ ३ ॥

मंदार सरोजं, कदली जोजं, पुंज भरोजं, मलयभरं, भरि कंचनथारी, तुम ढिंग धारी, मदनविदारी, धीरधरं ॥ श्री० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति० ॥ ४ ॥

पकवान नवीने, पावन कीने, षटरसभीने, सुखदाई । मनमोदनहारे, छुधा विदारे, आगे धारें, गुनगाई ॥ श्री० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति० ॥ ५ ॥

तुम ज्ञानप्रकाशे, भ्रमतम नाशे, ज्ञेयविकाशे सुखरासे । दीपक उजियारा, यातैं धारा, मोहनिवारा, निज भासे ॥ श्री० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति० ॥ ६ ॥

चन्दन करपूरं, करि वरचूरं, पावक भूरं, माहि जुरं । तसु धूम उडावै, नांचत जावै, अलि गुंजावै, मधुरसुरं ॥ श्री० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति०

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं, लै आयो। तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निजरसरज्जों, उमगायो॥ श्री०॥ ८॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

वसु द्रव्य सँवारी तुमढिंग धारी, आनंदकारी, दृगप्यारी। तुम हो भवतारी, करुनाधारी, यातैं थारी, शरनारी॥ श्री०॥ ९॥

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ९॥

पंचकल्याणक।

सुंदरी तथा द्रुतविलंबित छंद।

असित सातय भादव जानिये। गरभमंगल ता-दिन मानिये॥ सचि कियो जननी पद चर्चनं। हम करैं इत ये पद अर्चनं॥ १॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं नि०॥

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है। सकलइंद्र सु

आगत धाम है ॥ गजपुरै गज साजि सबै तबै ।
गिरि जजे इत मैं जाजि हों अबै ॥ २ ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥ २ ॥

भव शरीर सुभोग असार हैं । इमि विचार तबै तप धार हैं ॥ भ्रमर चौदश जेठ सुहावनी ।
धरमहेत जजों गुन पावनी ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्री-शान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं नि०

शुकलपौष दशैं सुखराश है । परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है ॥ भवसमुद्रउधारन देवकी । हम करैं नित मंगल सेवकी ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥

असित चौदस जेठ हने अरी । गिरि समेदथकी शिव-तिय वरी ॥ सकल इंद्र जजैं तित आइकैं ।
हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथ-जिनेंद्राय अर्घं नि० ॥ ५ ॥

जयमाला ।

छंद रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्त्म (वर्ण ११, लाटानुप्रास) ।

शान्ति शान्तिगुनमंडिते सदा । जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा ॥ मैं तिन्हैं भगतमंडिते सदा । पूजि हौं कलुषहंडिते सदा ॥ १ ॥ मोच्छहेत तुम ही दयाल हो । हे जिनेश गुनरत्नमाल हो ॥ मैं अबै सुगुनदाम ही धरों । ध्यावतें तुरित मुक्ति तीवरों ॥ २ ॥

छंद पद्धरि (१६ मात्रा) ।

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज । भवसागरमें अद्भुत जहाज ॥ तुम तजि सरवारथसिद्ध थान । सरवारथजुत गजपुर महान ॥ १ ॥ तित जनम लियौ आनंद धार । हरि ततछिन आयो राजद्वार ॥ इंद्रानी जाय प्रसूतथान । तुमको करमें लै हरष मान ॥ २ ॥ हरि गोद देय सो मोदधार । सिर चमर अमर ढारत अपार ॥ गिरिराज जाय तित शिलापांड । तापै थाप्यो अभिषेक मांड ॥ ३ ॥ तित पंचम उदधितनों सु वार ।

सुर कर कर करि ल्याये उदार ॥ तब इंद्र सहसकर करि अनंद । तुम सिर धारा ढार्यौ सुनंद ॥ ४ ॥ अघ घघ घघ घघ धुनि होत घोर । भभ भभ भभ घघ घघ कलशशोर ॥ द्रुमद्रुम द्रुमद्रुम बाजत मृदंग । झन नन नन नन नन नूपुरंग ॥ ५ ॥ तन नन नन नन नन तनन तान । घन नन नन घंटा करत ध्वान ॥ ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल । जुत नाचत नावत तुमहि भाल ॥ ६ ॥ चट चट चट अटपट नटत नाट । झट झट झट हट नट शट विराट ॥ इमि नाचत राचत भगत रंग । सुर लेत जहां आनंद संग ॥ ७ ॥ इत्यादि अतुल मंगल सुठाट । तित बन्यो जहां सुरगिरि विराट ॥ पुनि करि नियोग पितुसदन आय । हरि सौंप्यो तुम तित वृद्ध थाय ॥ पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न । भोग्यौ छखंड करि धरम जत्न ॥ पुनि तप धरि केवलरिद्धि पाय । भवि जीवनकों शिवमग बताय ॥ शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश । गुनमंडित अतुल अनन्त भेष ॥ मैं ध्यावतु हौं नित

शीश नाय। हमरी भवबाधा हरि जिनाय ॥१०॥
सेवक अपनों निज जान जान। करुना करि भौभय भान भान॥ यह विघन मूल तरु खंड खंड। चितचिन्तित आनँद मंड मंड॥ ११॥

घत्तानंद छंद (मात्रा ३१)।

श्रीशान्ति महंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवन्ता। भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनंता, दातारं तारनवन्ता॥ १॥

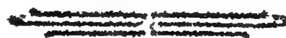
ओं ह्रीं शान्तिनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।९।

छंद रूपक सवैया (मात्रा ३१)।

शांतिनाथजिनके पदपंकज, जो भवि पूजें मन-वचकाय। जनम जनमके पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय॥ मनवांछित सुख पावें सो नर, वांचे भगतिभाव अति लाय। तातें 'वृन्दावन' नित वंदै, जातैं शिवपुरराज कराय॥ १॥

इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

इति श्रीशान्तिनाथजिनपूजा समाप्त॥ १६॥



(४०)

अथ पार्श्वनाथ पूजा ।

गीता ।

वर सुरग आनतको विहाय सुमातवामा सुत भये । विस्वसेनके पारस जिनेसुर, चरन तिनके सुर नये ॥ नव हाथ उन्नत तन बिराजे उरग लच्छन अतिलशै । थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठहु करम मेरे सब नशै ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

छन्द नाराच ।

क्षीर सोमके समान अंबुसार लाइये । हेमपात्र धारकेसु आपको चढाइये ॥ पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूं सदा । दीजिये निवास मोक्ष, भूलिये नहीं कदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

चन्दनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये ।
आप चर्न चर्च मोहतापको हनीजिये ॥

पार्श्वनाथदेव सेव आपकी करूं सदा ।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा ॥ २ ॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय भवतापविनाशनाय चंदनं नि-
र्वपामीति स्वाहा ॥

फेन चंदके समान अक्षतं मगाइकें । पादके स-
मीप सार पुंजको रचाइकें । पार्श्वनाथ० ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान्
निर्वपामीति स्वाहा ॥

केवड़ा गुलाब और केतुकी चुनाइये । धारचर्न
के समीप कामको नसाइये । पार्श्वनाथ० ॥४॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं
निर्वपामीति स्वाहा ॥

घेवरादि बावरादि मिष्ट सर्पिमें सने । आप चर्नच-
र्चते क्षुधादि रोगको हने । पार्श्वनाथ ० ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व-
पामीति स्वाहा ॥

लाय रत्न दीपको सनेह पूरके भरूं । वातिका
कपूरवारि मोहध्वांतको हरूं । पार्श्वनाथ० ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं
निर्वपामीति स्वाहा ॥

धूप गंध लेयके सुअग्नि संग जारिये । तास धू-
पके सुसंग अष्टकर्म बारिये ॥ पार्श्वनाथ० ॥७॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व-
पामीति स्वाहा ॥

खारिकादि चिर्भटादि रत्नथालमें धरूं । हर्षधा-
रके जजूं सुमोक्ष सुक्खकूं वरूं ॥ पार्श्वनाथ० ॥८॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा-
मीति स्वाहा ॥

नीर गंध अक्षतं सुपुष्प चारु लीजिये । दीपधू-
प श्रीफलादि अर्घतैं जजीजिये ॥ पार्श्वनाथ०

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व-
पामीति स्वाहा ॥

पंचकल्याणक ।

छन्द चाल ।

शुभआनत स्वर्ग विहाये । वामा माता उर आ-
ये । वैशाखतनी दुति कारी, हमपूजैं विघ्न
निवारी ॥ १ ॥

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वना-
थजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जनमे त्रिभुवन सुखदाता, एकादशि पौष विख्याता । श्यामा तन अद्भुत राजै । रवि कोटिक तेजसु लाजै ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

कलि पौष इकादशि आई, तब बारह भावन भाई । अपने कर लौंच सु कीना । हम पूजें चर्न जजीना ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपःकल्याणमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई ॥ तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवनको सुख दीना ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थीदिने केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

सित श्रावन सातैं आई, शिवनारि वरी जिनराई । सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजें मोक्ष कल्याना ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तमीदिने मोक्षमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जयमाला ।

कवित्त ।

पारसनाथ जिनेंद्रतने बच पौनभखी जरते सु-
नपाये । कियो सरधान लियो पद आन भये प-
द्मावती शेष कहाये । नामप्रताप टरे संताप सुभ-
व्यनको शिव शर्म दिखाये । हो विश्वसेनके
नंद भले गुन गावतु हैं तुमरे हरखाये ॥ १ ॥

दोहा ।

केकीकंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ ।
लच्छन उरग निहार पग, बंदू पारसनाथ ॥२॥

छंद मोतिदाम ।

रची नगरी षट मास अगार । बने चहुं गोपुर
शोभ अपार ॥ सुकोट तनी रचना छवि देत ।
कंगूरनपै लहके बहुकेत ॥ ३ ॥ बनारसकी रचना
छवि सार । करी बहुभांति धनेश तयार ॥ तहां
विश्वसेन नरेंद्र उदार । करैं सुख वाम सुदे पटनार
॥४॥ तज्यो तुम आनत नाम विमान । भये तिनके
वर नंदन आन ॥ तबै पुर इंद्र नियोग जु आय ।
गिरिंद करी विधि न्होन सु जाय ॥ ५ ॥ पिता

घर सौंपि गये निज धाम । कुबेर करै वसु जाम सुकाम ॥ चढे जिन दोज गयंद नमान । रमें बहु बालक निर्जर आन ॥ ६ ॥ भये जब अष्टमवर्ष कुमार । धरे अणुव्रत महासुखकार ॥ पिता जब आन करी अरदास । करो तुम व्याह वरो मम आश ॥ ७ ॥ करूं तब नाहि कहै जगचंद । किये तुम काम कषाय जु मंद ॥ चढे गजराज कुमारन संग । सुदेखत गंगनरी सु तरंग ॥ ८ ॥ लख्यो इक रंक करै तप घोर । चहूं दिशि अग्नि जलै अतिजोर ॥ कही जिननाथ अरे सुन भ्रात । करै बहु जीवनको मत घात ॥ ९ ॥ भयो तब कोपि कहै कित जीव । जलै तब नाग दिखाय सजीव ॥ लख्यो इह कारन भावन भाय । नये दिव ब्रह्म ऋषीश्वर आय ॥ १० ॥ तबै सुर चार प्रकार नियोगि । धरी शिविका निज कंध मनोगि ॥ कियो वन माहि निवास जिनंद । धरे व्रत चारित आनंदकंद ॥ ११ ॥ गहे तहँ अष्टमके उपवास । गये धनदत्त तने जु अवास ॥ दियो पयदान महा-

सुख सार । भई पण वृष्टि तहां तिहं बार ॥१२॥ गये तब कानन माहि दयाल। धरचो तुम योग सबै अघ टाल ॥ तबै वह धूम सुकेत अजान । भयो कमठाचरको सुर आन ॥ १३ ॥ करै नभगौन लखे तुम धीर । सुपूरव वैर विचार गहीर ॥ कियो उपसर्ग भयानक घोर । चली बहु तीक्षण पौनझकोर ॥ रह्यो दशहूं दिशिमें तप छाय । लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय ॥ सुरुंडनके विन मुंड दिखाय । परै जल मूसलधार अथाय ॥ १५ ॥ तबै पद्मावतिकंथ धनिंद । गहे जुग आय तहां जिनचंद ॥ भग्यो तब रंक सुदेखत हाल । लह्यो तब केवल ज्ञानविशाल ॥१६॥ दियो उपदेश महा हितकार। सुभव्यानि बोधि समेद पधार ॥ सुवर्णहभद्र सुकूट प्रसिद्ध । वरी शिवनारि लही वसुरिद्ध ॥ १७ । जजूं तुम चर्न दुहूं कर जोर । प्रभू लखिये अब ही मम ओर ॥ कहै 'वखतावर' 'रत्न' बनाय। जिनेश हमें भवपार लगाय ॥ १८ ॥

घत्ता ।

जै पारसदेवं सुरकृतसेवं वंदत चर्न सुनागपती।
करुनाके धारी पर उपगारी शिवसुखकारी कर्म हती ॥ १९ ॥

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

छंद मत्तगयंद सर्वैया ।

जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नित ही ।
ताके दुख सब जांय भीति व्यापै नहि कित ही ॥
सुख संपति अधिकाय पुत्रमित्रादिक सारै ।
अनुक्रमतैं शिव लहै रत्न इमि कहै पुकारै ॥२०॥

इत्याशीर्वादः ।

इति श्रीपार्श्वनाथपूजा समाप्त ॥

(४१)

श्रीवर्द्धमानजिनपूजा ।

मत्तगयंद ।

श्रीमतवीर हरैं भवपीर, भरैं सुखसीर अनाकुलताई । केहरिअंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआई ॥ मैं तुमको इत थापत हौं प्रभु: भक्ति समेत हिये हरखाई । हे करुणाध-

नधारक देव, इहां अब तिष्ठ हु शीघ्रहि आई ॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । १।

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ॥ २ ॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ३.

अष्टक ।

छंद अष्टपदी ।

(द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकादिक अनेक रागोंमें भी बनतीहै)

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों ।

प्रभु वेग हरो भवपीर, यातैं धार करों ॥

श्रीवीरमहा अतिवीर सन्मतिनायक हो ।

जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मलयागिरचंदनसार, केसरसंग घसा ।

प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसा श्री०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति० ॥ २ ॥

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीनों थार भरी ।

तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावों शिवनगरी श्री०

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व-
पामीति० ॥ ३ ॥

सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथभंजनहेत, पूजों पद थारे ॥ श्री० ४
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं
निर्वपामीति० ॥ ४ ॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्री०
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं
निर्वपामीति० ॥ ५ ॥

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हों ॥
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों। श्री०
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं
निर्वपामीति० ॥ ६ ॥

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥ श्री० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० ॥ति०

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरा।
शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिग भेंट धरा। श्री०

१५

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जलफल वसु साजि हिमथार, तनमनमोद धरों।
गुण गाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरों ॥ श्री०

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक।

राग टप्पाचालमें।

मोहि राखो हो, सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो० ॥ गरभ साढ़सित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघहरना। सुर सुरपति तित सेव कर्यो नित, मैं पूजों भवतरना॥ मोहिरा०

ओं ह्रीं आषाढशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० ॥

जन्म चैतसित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना। सुरगिर सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना ॥ मोहिरा० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥

मगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना। नृप कुमार घर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना॥ मोहि रा० ॥

ॐ ह्रीं मार्गशिरकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥

शुकलदशैं बैशाखदिवस अरि, घाति चतुक छय करना। केवल लहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना॥ मोहि० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतें वरना। गनफनिवृंद जजें तित बहुविधि, मैं पूजों भयहरना॥ मो० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥

जयमाला।

छंद हरिगीता २८ मात्रा।

गनधर असनिधर, चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा। अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर

सेवहिं सदा ॥ दुखहरन आनँदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं। सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं॥ १॥

घत्तानन्द ।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन, चंदवरं। भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं॥ २॥

छंद तोटक ।

जय केवलभानुकलासदनं। भविकोकविकाशनकंदवनं॥ जगजीत महारिपु मोहहरं। रजज्ञानदृगावर चूरकरं॥ १॥ गर्भादिकमंगलमंडित हो। दुख दारिदको नित खंडित हो॥ जगमाहिं तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावविहंडित हो॥ २॥ हरिवंशसरोजनकों रवि हो। बलवंत महंत तुमी कवि हो॥ लहि केवल धर्मप्रकाश कियौ। अबलौं सोई मारगराजति यौ॥ पुनि आप तने गुनमाहिं सही। सुर मग्न रहैं जितने सबही॥ तिनकी वनिता गुन गावत हैं। लय

मानानिसों मनभावत हैं ॥ ४ ॥ पुनि नाचत रंग उमंग भरी । तुअ भक्तिविषै पग येम धरी ॥ झननं झननं झननं झननं । सुरलेत तहाँ ननननं तननं ॥ ५ ॥ घननं घननं घनघंट बजे । दृमदं दृमदं मिरदंग सजे ॥ गगनांगनगर्भगता सुगता । ततता ततता अतता वितता ॥ ६ ॥ धृगतां धृगतां गति बाजत है । सुरताल रसाल जु छाजत है ॥ सननं सननं सननं नभमैं । इकरूप अनेक जु धारि भमे ॥ ७ ॥ कई नारि सु वीन बजावति हैं । तुमरो जस उज्जल गावति हैं ॥ करतालविषै करताल धरें । सुरताल विशाल जु नाद करें ॥ ८ ॥ इन आदि अनेक उछाहभरी । सुरभक्ति करें प्रभुजी तुमरी ॥ तुमही जगजीवनिके पितु हो । तुमही विनकारनतें हितु हो ॥ तुमही सब विघ्नविनाशन हो । तुमही निज आनंद-भासन हो ॥ तुमही चितचिंतितदायक हो । जगमाहि तुमी सब लायक हो ॥ तुमरे पनमंगलमाहिं सही । जिय उत्तम पुन्नलियो सब ही ॥ हमको तुमरी सरनागत है । तुमरे गुनमें मन

पागत है ॥ ११ ॥ प्रभु मोहिय और सदा बसि-
ये । तबलों वसुकर्म नहीं नासिये ॥ तब-
लों तुम ध्यान हिये वरतो । तबलों श्रुतचिंतन
चित्त रतो ॥ १२ ॥ तबलों व्रत चारित चाहतु
हों । तबलों शुभ भाव सुगाहतु हों ॥ तबलौं
सत संगति नित्त रहौं । तबलों मम संजम चित्त
गहौं ॥ १३ ॥ जबलों नहिं नाश करों अरिको
शिवनारि वरो समता धरिको ॥ यह द्यो तबलों
हमको जिनजी । हम जाचतु हैं इतनी सुनजी

घत्तानंद ।

श्रीवीरजिनेशा नमितसुरेशा, नागनरेशा भग-
ति भरा । 'वृंदावन' ध्यावै विघननशावे बांछित
पाव शर्म वरा ॥ १५ ॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दोहा ।

श्रीसनमतिके जुगलपद, जो पूजै धरि प्रीत ।
वृंदावन सो चतुरनर, लहै मुक्तिनवनीत ॥१६॥

इत्याशीर्वादः । परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

इति श्रीवर्द्धमानजिनपूजा समाप्त ॥ ४१ ॥

अथ सूरतकवि कृत ।

(५२)

बारहखड़ी ।

दोहा ।

प्रथम नमूं अरहंतको, नमूं सिद्ध आचार ।
उपाध्याय सब साधुको, नमूं पंच परकार ॥ १ ॥
भजन करूं श्रीआदिको, अंत नाम महावीर ।
तीर्थंकर चउबीसको, नमूं ध्यान धर धीर ॥ २ ॥
जिनधुनितैं बानी खिरी, प्रगट भई संसार ।
नमस्कार ताकूं करूं, इकचित तनमन धार ॥ ३ ॥
जा बानीके सुनतही, बढ्यो परम आनंद ।
भई सुरति कछु कहन की बारखडीके छंद ॥ ४ ॥
बारखडीके छंद बनाऊं यह मेरे मन आई ।
जैन पुराण बखानी बानी, सो मैं सुन पाई ॥
गुरुप्रसाद भविजनकी संगति, यह उपजी चतु-
राई । सूरत कहै बुद्धि है थोरी, श्री जिन नाम
सहाई ॥ कका करत सदा फिरयो जनमन मरन
अनेक । लख चौरासी जोनिमें, काज न सुधरयो
एक ॥ काज न सुधरयो एक दिवाने, सैं शुभ

अशुभ कमाया । तेरी भूलि तुहीं दुखदाई, वहु तेरा समुझाया ॥ भटकत फिर्यो चहूं गति भीतर काल अनंत गमाया । सूरत सत गुरु सीख न मानी तातैं जग भरमाया ॥ ५ ॥ खक्खा खूबी मत लखो संसारी सुखजान । यह सुख, दुख का मूर है, सतगुरु कही वखान ॥ सतगुरु कही बखान जान यह, तू मति होय अयाना । विनाशीक सुख इन इंद्रिनका, तैं मीठा करि जाना ॥ यह सुख जानि खानि है दुखकी, तू क्या भरम भुलाना । सूरत पछतावेगा तबही, होय नरक जब थाना ॥ ६ ॥ गग्गा गुरु निरग्रंथको, सतबानी मुख भाख । अवर विकार सबै तजो यह थिरता मन राख ॥ यह थिरता मन राखि चाखि रस, जो अपना सुख चाहे । अवर सबहि जंजाल दूर करि ये बातें अवगाहे ॥ पांचों इंद्रीवस करि अपनी कर्ममूलको दाहे । सूरत चेत अचेत होय मति, अवसर बीता जाहै ॥ घग्घा घाट सुघाटमें नाव लगी है आय । जो अबके चेतै नहीं, तो गहरे गोते खाय ॥ गहिरे

गोते खाय जाय जब कौन निकासन हारा। समय पाय मानुषगति पाई, अजहूं नांहि स-भारा॥ वार वार समझाऊं चेतन मानो कहा हमारा। सूरत कही पुकार गुरूने, यों हो है निस्तारा॥ ८॥ नन्ना नाता जगतमें, अपस्वा-रथ सबकोय। आन गांठि जिसदिन पडै कोउ-न सँगाती होय॥ कोउन सँगाती सगा न सा-थी जिसदिन काल सतावै। सब परिवार अप-न स्वारथका, तेरे काम न आवै॥ आठों मदमें छाकि रह्या है, मैं मैं मैं बिललावै। सूरत सम-झि होय मत बौरा, अवसर बीता जावै॥ ९॥ चच्चा चंचल विकलमन, तिस मनको वसिआन। जबलग मन वसमें नहीं, काज न होय निदान॥ काज न होय निदान जान यह, वस नाहीं मन तेरा। पांचूं इंद्री छठा चोरमन, तू इनका भया चेरा॥ राग दोष अरु मोह समांणी इनहू आन मेल घेरा। सूरत जिसदिन मनथिर हो है, ति-सदिन होय न वेरा॥ १०॥ छच्छा छक रसु स्वादमें, रह्या छको रसमान। छाकि रह्या छादै

नहीं, समुझत नाहिं अजान ॥ समुझत नाहिं अजान जात यह इन स्वादनमें राचा । आरत चिंता लाग रही है ज्ञानध्यानको काचा ॥ जैसे कर्म नचावे तोकूं, तैसाही विधि नाचा ॥ सूरत फिरचे चहूं गति भीतर मिल्यो न सतगुरु साचा ॥ ११ ॥ जज्जा जाग सुजाग नर, यह जागनकी वार । जो अब तू जागे नहीं, फेर न होय सँभार ॥ फेर न होय सँभार सार यह, जो अबकै नहि जागे । जो जागे निरभय पद पावे जरा मरन भय भागे ॥ नातरि फेर फंसे भवसागर, हाथ कछू नहि लागे ॥ सूरत भला होय जब तेरा, संसारी सुख त्यागे ॥ १६ ॥

झज्झा झारिपछोरिके, कहूं तोहि समुझाय । जामें तैं वासा किया, सो तेरी नहिं काय ॥ सो तेरी नहि काय जाय संग, तुझअकेला जाना। तैनें घर बहुतेर किये हैंआदत जात भुलाना ॥ थावर पच त्रस पक्षी मानुष, भयो देव कहुं दाना । सूरत छहो काय तैं भुगते आपा नहीं पिछाना ॥ नन्ना भव पद है भलो ऐसा अवर न कोय । जेइ

संभारे तेह निरे भवजल पार जु होय ॥ भवजल पार जु होय विचारे, जे इस बेर संभारा । तीन काल जिन सही परीषह, कर्म चूरकर डारा ॥ आवन जात काल बहु वीता, लोकालोक निहारा । सूरत जो सुख ऐसा चाहे, चेतो बेग संवारा ॥ १४ ॥ ट्ट्टा टाला तिन किया, ते छूटे संसार । फिरहिं भटकते जगतमें तिनको वार न पार ॥ तिनको वार न पार कहू है, फिरते फिरहिं विचारे । नर तिरजंच नरक देवगति, चारों धाम निहारे ॥ जम्मन मरन किये बहु तेरे, सहे महादुख भारे । सूरत कौतुक आप कमाये, काये जाय पुकारे ॥ ॥ १५ ॥ ठट्ठा ठठाकि कहां रह्यो वेगहु क्यों न संभाल । छोडि ठट संसारके जो छूटे जगजाल ॥ जो छूटे जगजाल चाउरे, बहुरि नहीं दुखपावे । सतगुरु कही मान जो शिक्षा फेर न जगमें आवे ॥ छोडो संग कुमति नारीको जो तुमको बहकावे । सुमति संग सुमतिकी कीजे शिवपुर जान दिखावे ॥ १६ ॥ डड्डा डिग मति जाय तू अडिग होय पद साधि । छूटता

करि परिणामकी, जो सुख लहे समाधि ॥ जो सुख लहे समाधि व्याधि तज, अप्पा खोजे भाई। सिद्धरूप तेरे घट अंतर, कहां ढूंढने जाई ॥ जड़ पुद्गलकों भिन्न जान तू मिटे करम दुखदाई। सूरत आप आपमैं साधे, यह सतगुरु फरमाई ढड्ढा ढोरी छोडदे, ढिगइनके मत जाय। कुगुरु कुदेव कुज्ञानको, तू माति चित्त लगाय ॥ तू माति चित्त लगाय भावतजि कुगुरु कुदेव कुज्ञानी। ये तोकूं दुरगति दिखलावैं, सो दुख मूल निशानी ॥ इनतैं काज एक नाहिं सुधरे, करम भरमके दानी। सूरत तजि विपरीत इन्होंकी, सतगुरु आप बखानी ॥ १८ ॥ णण्णा रण ऐसा करो, संवर शस्त्र संभार। कर्म रूप ये अरि वडे तिनहि ताकि करि मार ॥ तिनहि ताकि करि मार, निवारो कर्म रूप और सोई। है अनादिके ये दुखदाई, तेरी जाति विगोई ॥ नारायण प्रतिहरि हर चक्री, यातैं वचे न कोई। सूरत ज्ञान सुभट जब जागे, तिन इनकी जड खोई ॥ १९ ॥

तत्ता तन तेरा नहीं, तामैं रह्यो लुभाय।
नाता तोरे तनकमैं, ताहि कहा पतियाय॥
ताहि कहा पतियाय पाय सुख, हो रह्यो याको दासी। छिनमें मरे छिनकमें उपजे, होय जगतमें हासी। याके संग बढै बहु ममता परे महादुख फांसी। सूरत भिन्न जानि इम तनको, यासों रहो उदासी॥

थत्था थिरपदको चहे, यों थिरपद नाहि होय।
थिरता करि परिणामकी, थिर पद परसे सोय॥
थिर पद परसे सोय होय सुख, गति चारनसों छूटे। ज्ञान ध्यानको करे हथोरा, कर्म अरीको कूटे॥ यह जगजाल अनादि कालका सो ऐसी विधि टूटे। सूरत थिरपदको तो परसे, शिवपुर के सुख लूटे॥ २१॥

दद्दा दर्व छहों कहे, प्रगट जगतके माहि।
अन्तर दरव मल खेल है, ज्ञानी माने नाहि॥
ज्ञानी माने नाहि दरव ये जो रतननको जाने। माटी भूमि शैलको औ धंनि जगमें प्रगट बखाने

---

* [illegible]

पुदगल जीव धरम अरु अंधरम काल अकाश
प्रमाने। सूरत इन दरवनकी चरचा, ज्ञानी गिने
बखाने ॥ २२ ॥

धध्धा ध्यान जु जगतमैं, प्रगट कहे हैं च्यार।
आर्त रुद्र धर्म सु शुक्ल, जिनमत कहे विचार॥
जिनमत कहे विचार चार ये, ध्यान जगतके
माहीं। आरत रौद्र अशुभके दाता, इनतैं शु-
भगति नाहीं॥ धर्म ध्यानके जे नर धारक,
शुभसुख होत सदाही। सूरत शुकलध्यानके
करता, ते शिवपुरको जाईं॥ २३ ॥

नन्ना नाशै करम जग, नेह धरै निज माहि।
नटकी कला जु जगतमें, नेह करै छिन नाहिं॥
नेह करै छिन नाहि जगतमें, अप्पा नाहि फ-
सावे। ज्यों पानीमें रहै कमल तरु, जल भेदन
नाहि पावै॥ शुभ अरु अशुभ एकसे दोनों,
रीझै ना पछतावे। सूरत भिन्न लखै ऐसी विध,
करम कहाँ ढिग आवै॥ २४ ॥

पप्पा प्रभु अपना लखो, परसंगति दे छोर।
परसंगति आस्रव बढै, देहि करम झकझोर॥

देय करम झकझोर जोरिकरि. फिर निकसन नहि होई । आस्रव बंध परी है बेरी, लग उपाय न कोई ॥ यातें प्रीति करो संवरसों. हित करके दिल जोई । सूरत संवरको आदरिये, कर्म निर्जरा होई ॥ २५ ॥

फफ्फा फूल्यो ही फिरै, फोकट देखन भूल ।
फांसी पड़ी अनादिकी, करि तोड़नको सूल ॥
कर तोडनको मूल भूलमति, दाव भलो तें पायो । भ्रमते भ्रमते भवसागरमें, मानुष गतिमें आयो ॥ याही गतिसों भये तीर्थंकर, केवल ज्ञान उपायो । सूरत जानि भूलिमति चूकै. यह सत गुरु फरमायो ॥ २६ ॥

बब्बा बिसन कुविसन है, बिसन वेग नृ त्याग ।
बस करि पांचों इंद्रियनि, शुभकारजको लाग ॥
शुभकारजको लाग लाग नर, बिसन नाम है भारी । जूआ आमिषसुरा पान अरु, आखेटक दुखकारी । परधन चोरी अरु वेश्याकूं, त्याग करो परनारी ॥ सूरत इन भवमें दुख पावे, पर भव दुख अधिकारी ॥ २७ ॥

भम्भा भूल्यो ही फिरै, भरम्यो महा मिथ्यात।
भेद न पायो ज्ञानको, तातैं आवत जात॥
तातै आवत जात बात सुनि, भेद ज्ञान नहिं पाया। क्रोध मान लोभ अरु माया, इन सौं नेह लगाया॥ परमारथकी रीति न जानी, स्वारथ देख भुलाया। सूरत भेद ज्ञान जब जाना, तब मिथ्यात मिटाया॥ २८॥

मम्मा मति तिनकी सही, निज मल कीनो दूर।
मतवारे समुझै नहीं, तिनको नाहिं सहूर॥
तिनको नाहिं सहूर दूर है, कुमति कुमत विचारै। तिन कुगुरुनि तिनकी समुझाये पकरि भवोदधि डारै॥ पुण्य पापको भेद न जाने, जीव अनाहक मारै। सूरत ते नर परे कुसंगति, किस बिध जाहिं उवारे॥ २९॥

यया अयान पणो बुरो, यातैं होय अकाज।
यह ममतासों फसि रह्यो, याहि न आवै लाज॥
याहि न आवै लाज बाज नहि, कह तेरो यहां को है। तात मात बांधव सुत कामिन, तू इनके सुख मोहै॥ आठों जाम रहे इन ही में, यह

तुमको नहि सोहै। सूरत तजि अज्ञान ज्ञान गुरु तब शिव सुर सुख हो है ॥ ३० ॥

ररी रुच्यो अनादिको, राचे विषयनिसों प्रीति ।
रस चाख्यो नहि आतमी, लखी न रसकी रीति ॥

लखी न रसकी रीति मीत, तैं विषयनि संग सुख माना । आतमीक रस है सुखदायक, सो तैं नहीं पिछाना ॥ जिन रस रीति लखी आतमकी, सो शिवपुरका राना । सूरत वे भवि मुक्ति गये हैं, जिन आतम हित ठाना ॥ ३१ ॥

लला लिपट्यो ही रहै, लख्यो जगतके भेक ।
लख्यो न आप सरूपको, लख्यो न शुद्ध विवेक ॥

लख्यो न शुद्ध विवेक एक तैं, पर अपना नहिं बूझा । वस्तु पराई लखी न भाई, तातैं रह्यो अरूझा ॥ वस्तु विनाशी नहीं प्रकाशी, तू कर्मन संग जूझा । सूरत वे भव पार भये हैं, जिनको आतम सूझा ॥ ३२ ॥

वव्वा वह संगत बुरी, जामों होय कुभाव ।
सो संगति शैली भली, जामें सहज सुभाव ॥

जामें सहज सुभाव भाव है, सो शैली माहि

ध्यारी। तत्त्व दरवकी चर्चा तिनके, तजैं कुच-र्चा भारी॥ भरम भावतैं दुर रहत हैं, धर्म ध्यानकी त्यारी। सूरत यह बांछा मन मेरे, उन मित्रनसों यारी॥ ३३॥

शश्शा सोई सुघर है, सुने सुगुरुकी सीख।
सदा रहे शुभध्यानमें, सही जैनकी ठीक॥
सही जैनकी ठीक तिन्होंके, अवर कछू नहिं भावे। आगम अवर अध्यातम वानी, सुने सुनावे गावे॥ कुकथाचार विचार जगतमें, तिनको नाहिं सुहावे। सूरत सो सज्जन मो भावे, जो शिवपंथ बतावे॥ ३४॥

खक्खा खुटक निवारिकैं, खिमाभाव चितलाय।
खुले कपाट अभ्यासके, खिरे करम दुखदाय॥
खिरे करम दुखदाय जाय वह, खिमाभाव चितल्यावे। होय अभ्यास तास भविजनको, ज्ञानी ज्ञान जगावे॥ सदा मगनता अपने मनमें, रीझ आप सुख पावे। सूरत सोई मित्र सबनतैं, सो आतम हित लावे॥ ३५॥

सस्सा सो स्याना सदा, सुगुरु सीख सुन लेह।
सदा रहे संतोषमें, सो साधू लखिलेह॥

सो साधू लखि देह गेह में, जो संतोष विचारे। सीख बात है जो संसारी, तिनको नहीं निहारे॥ सँकल्प विकल्प जग के जितने, तिन दुखमलको टारे। सूरत सो साधू जन ऐसा, शिवपुर वेग सिधारे॥ ३६॥

हाहा हूहू कर रह्यो, है परवासि दुख पाय।
क्यों न आप वश हूजिये, होय परम सुख दाय॥
होय परम सुखदाय पाय पद, (है) अनरूपी अविनाशी। केवलज्ञान दर्श जहँ केवल, सिद्धपुरी सुखराशी॥ आठों करम खिपावें जिनके, आठों गुन परकासी। सूरत सिद्ध महासुख पावे, काल अनंता पासी॥ ३७॥

लक्ष लेके परमपद, लखि लखगये निर्वान।
लोक शिखर ऊपर चढे, लयो सिद्ध शिवथान॥
लयो सिद्ध शिवथान आन लखि, सोहं सिद्ध कहाये। दर्शनज्ञान चरन गुन तीनों, तिन शिवपुर पहुंचाये॥ जो जो दरसै सो सो भासे, आप अचल ठहराये। सूरत सिद्ध कहै ऐसे गुरु, जिन पुरानमें गाये॥ ३८॥

क्षक्षा लक्ष्मी जो वरै, गुन लक्षनको वेव ।
लखै सुलक्षन परखिकैं, तजै कुलक्षण टेव ॥
तजै कुलच्छन टेव भेव लखि, सिद्धरूपको ध्यावे । अरहत सिध आचार्य उपाध्याय, साधन सीस नवावै ॥ जिनमत धर्म देव गुरु न्यारों, यह दिढता मनलावै । सूरत यह परतीत धरै मन, सो सम्यक पद पावै ॥ ३९ ॥ सम्यक पद को जो लहै, करै वैनगुरु प्रीत । देव धरम गुरु ज्ञानको, परखि गहै निजरीति ॥ ४० ॥ बारखड़ी हितसों कही, नहि गुनियनकी रीस । दोहे तौ चालीस हैं, छंद कहे छत्तीस ॥ ४१ ॥

इति श्रीसूरतकविकृत बारहखड़ी समाप्ता ॥ ४२ ॥

(४३)

आरती संग्रह ।

इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परमपद भज सुख लीजे ॥ टेक ॥ प्रथम आरती श्रीजिनराजा । भवजल पार उतार जिहाजा ॥ इह-विधि० ॥ १ ॥ दूसरि आरति सिद्धनकेरी । सुमिरन करत मिटै भवफेरी ॥ इहविधि० ॥ २ ॥

तीजी आरति सूर मुनिंदा। जनममरन दुख दूरकरिंदा ॥ इहविधि० ॥ ३ ॥ चौथी आरति श्रीउवझाया। दर्शन देखत पाप पलाया ॥ इह-विधि० ॥ ४ ॥ पांचमि आरति साधु तिहारी। कुमति विनाशन शिव अधिकारी ॥ इहविधि० ॥ ५ ॥ छट्ठी ग्यारहप्रतिमा धारी। श्रावक वंदों आनँदकारी ॥ इहविधि० ॥ ६ ॥ सातमि आरति श्रीजिनवानी। 'द्यानत' सुरग मुकति सुखदा-नी ॥ इहविधि० ॥ ७ ॥

आरति श्रीजिनराज तिहारी। करमदलन संतनहितकारी ॥ टेक ॥ सुरनर असुरकरत तुम सेवा। तुम ही सब देवनके देवा ॥ आरति श्री० ॥ १ ॥ पंचमहाव्रत दुद्धर धारे। रागदोष परिनाम विदारे ॥ आरति श्री० ॥ २ ॥ भव-भय भीत सरन जे आये। ते परमारथ पंथ ल-गाये ॥ आरति श्री० ॥ ३ ॥ जो तुम नाम जपै मन माहीं। जनममरन भय ताको नाहीं ॥ आरति श्री० ॥ ४ ॥ समवसरन संपूरन शो-भा। जीते क्रोध मान छल लोभा ॥ आरति

श्री० ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसें करि गावें। गणधर कहत पार नहिं पावें ॥ आरति श्री० ॥ ६ ॥ करुणासागर करुणा कीजे। 'द्यानत' सेवकको सुख दीजे ॥ आरति श्री० ॥ ७ ॥

अथ पंचपरमेष्ठीकी आरती।

चाल खड़ी।

मनवचतनकर शुद्ध पंचपद, पूजहु भविजन सुखदाई । सबजन मिलकर दीप धूप ले, करहु आरती गुणगाई ॥ टेक ॥ प्रथमहिं श्रीअरहंत परमगुरु, चौतिस अतिशय सहित वसैं। प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय, सहित समवसृत माहिं लसैं ॥ क्षुधा[1] तृषा[2] भय[3] जन्म[4] जरा[5] मृति[6], रोग[7] शोक[8] रति[9] अरति[10] महा। विस्मय[11] खेद[12] स्वेद[13] मद[14] निद्रा[15], राग[16] द्वेष[17] मिल मोह[18] दहा। इन अष्टादश दोषरहित नित, इन्द्रादिक पूजत आई। सब जन मिल० ॥ १ ॥

दूजे सिद्ध सदा सुखदाता, सिद्धशिलापर राजत हैं। सम्यकदर्शन ज्ञान वीर्य अरु, सूक्ष्म गणाकर छाजत हैं ॥ अगुरुलघू अवगहनश-

क्ति घर, बाधाविन अशरीरा हैं। जिनको सु-मरण नित्य कियेतैं, शीघ्र नशात भवपीरा हैं। या कारण नित चित्त शुद्ध कर, भजहु सिद्ध शिवके राई। सबजन मिल० ॥ २ ॥

तीजे श्रीआचार्य्य परमगुरु, छत्तिस गुणके धारी हैं॥ दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज पंचाचार प्रचारी हैं॥ द्वादशतप दशधर्म गुप्तित्रय, षट् आवश्यक नित पालैं॥ सब मुनिजनको प्राय-श्चित दे, मुनिव्रतके दूषण टालैं। ऐसे श्रीआ-चार्य्य गुरुनकी, पूजा करिये चितलाई। सब जन मिल० ॥ ३ ॥

चौथे श्रीउवझायचरणपं,—कजरज, सुखदा भविजनको। ग्यारह अंग सु पूर्वचतुर्दश, पढ़ैं पढ़ावें मुनिगनको॥ मुनिके सब आचरण आचरहिं, द्वादश तपके धारी हैं॥ स्याद्वाद सुखकारी विद्या, सब जगमें विस्तारी हैं। ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके चरणकमल पूजहु भाई। सब जन मिल० ॥ ४ ॥

पंचमि आरति सर्वसाधुकी, अट्ठाइस गुण

मूल धरें। पंचमहाव्रत पंचसमिति धर, इन्द्रिय पांचों दमन करें॥ षट आवश्यक केशलोंच इक, बार खडे भोजन करते। दांतण स्नान त्याग भू सोवत, यथाजातमुद्रा धरते॥ या विधि "पन्नालाल" पंचपद, पूजत भवदुख नश जाई। सब जन मिलकर० ॥ ५ ॥

इसप्रकार आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक दोहा और मंत्र पढकर आरतीको मस्तकपर चढावै।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्व-
मोहांधकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्
जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम्॥ १॥

दोहा।

स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि०॥ १॥

धूप चढाते समय अथवा धूपकी आशिका लेते समय नीचे लिखा श्लोक दोहा और मंत्र बोलना चाहिये।

दुष्टाष्टकर्मेंधनपुष्पजालसंधूपनं भासुरधूपकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधिगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् य-
जेऽहम् ॥ २ ॥

अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन ।
जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टकर्मविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो धूपं निर्व०

(४४)

जिन्होंकी सत्तामें, मुकुरसम चैतन्य जड़ भी.
स्थिती औ नाशोत्पत्ती. युत अलकते साथ सब ही ।
जगत्राता मार्ग. प्रकटकरते सूर्यसम जो.
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥१॥
जिन्होंके दो चक्षू. पलक अरु लाली रहित हों.
जनोंको दर्शाते, हृदयगत क्रोधाभिलयको ।
जिन्होंकी शांतात्मा. अतिविमलमूर्ती स्फुटमहा.
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ २ ॥
नमते देवोंके. मुकुटमणिकी कांति परना.
जिन्होंके पादोंका, युग, ललित. संतप्त जनको ।
भवाग्नीका हर्ता. स्मरण करते ही सुजल है,

महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥३॥
जिन्होंकी पूजासे, मुदितमन हो मेंढक जवै,
हुआ स्वर्गी ताही, समय गुणधारी अतिसुखी।
लहे जो मुक्तीके, सुख भगत तो विस्मय कहा,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥४॥
तपे सोने ज्योंभी, रहित वपुसे, ज्ञानगृह हैं,
अकेले नाना भी, नृपतिवर सिद्धार्थ सुत-हैं।
न जन्मे भी श्रीमान्, भवरत नहीं अद्भुतगती,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥५॥
जिन्होंकी वाग्गंगा, अमल नयकल्लोल धरती,
न्हवाती लोगोंको, सुविमल महा ज्ञानजलसे।
अभी भी सेते हैं, बुधजन महाहंस जिसको,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ॥६॥
त्रिलोकीका जेता, मदनभट जो दुर्जय महा,
युवावस्था में भी, वह दलित कीना स्वबलसे।
प्रकाशी मुक्तीके, अतिसुसुखदाता जिनविभू,
महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥७॥
महामोहव्याधी, हरणकरता वैद्य सहज,
विना इच्छा बंधू, प्रथितजग कल्याण करता।

सहारा भव्योंको सकल जगमें उत्तम गुणी,
महावीरस्वामी दरश हमको दें प्रकट ये ॥ ८ ॥
मंगल अष्टक रच्यो, भागचंद गुनिवान ।
सम भाषा अनुवाद कर, पढ़ि पावे निर्वान ॥ १ ॥

(४५)

अथ अकृत्रिम चैत्यालयोंका अर्घ ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीगतान् । वंदे
भावनव्यन्तरान्द्युतिवरान्कल्पामरावासगान् । सद्गन्धाक्षतपुष्प-
दामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलै । नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दु-
ष्कर्मणां शान्तये ॥ १ ॥
ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामी०
वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम् ॥
अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां । वनभवनगतानां दिव्य-
वैमानिकानाम् । इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां । जिनवर-
निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ २ ॥ जम्बूधातकिपुष्करा-
र्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा । चन्द्राम्भोजशिखण्डिकण्ठकनकप्रावृ-
ड्घनाभा जिनाः । सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना ।
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥ ३ ॥ श्री-
मन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बूवृक्षे । वक्षारे चै-
त्यवृक्षे रतिकररुचके कुण्डले मानुषाङ्के । इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ
दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके । ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भुव-
नमहितले यानि चैत्यालयानि ॥ ४ ॥ द्वौ कुन्देन्दुतुषार-

धवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ । द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ । शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः सन्तप्तहेमप्रभास्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धिअकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामी० ॥

इच्छामि भंते—चेइयभत्ती काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि । तीसुवि लोएसु भवणवासियवाणवितरजोयसियकप्पवासियंति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्राणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंतिं णमस्संति । अहमवि इह संतो तत्थ संताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि । दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं ।

(इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्णिकमाध्याह्निकआपराह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

[कायोत्सर्गकरना और नीचे लिखे मंत्र का नौवार जाप करना)

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं । णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

इति भाषाजैननित्यपाठसंग्रह समाप्त ।